खण्ड 1 - पद्यकाव्य किरातार्जुनीयम् - प्रथम सर्ग

इकाई 1. भारवि - परिचय एवं समय, महाकाव्य के रूप में किरातार्जुनीयम् का मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

कवि कालिदास अपने युग में श्रेष्ठतम ;साहित्य को जन्म दे चुके थे। कवि और नाटककार के रूप में उन्होंने साहित्यिक रचनाओं के उच्चतम मानदण्ड स्थापित कर दिये थे। उनके बाद के कवि लाख प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी उन मानदण्डों का स्पर्श न कर सके, परिणामस्वरूप अपने अस्तित्व के प्रदर्शन के लिए कवियों ने चमत्कार और विद्वता का सहारा लेकर अलंकरण की प्रवृत्ति को जन्म दिया। समय की गति के साथ परिष्कृत संस्कृत शैली, अत्यन्त गूढ़ उपमाओं तथा जटिल वाक्य रचनाओं के कारण भाराक्रान्त हो उठी तथा कविता की आत्मा इस नगर के नीचे कुचल कर रह गई। परवर्ती युग के कवियों ने पाण्डित्य प्रदर्शन, वाक् चातुर्य और अनुकरण का पथ अपना लिया। इन कवियों में भारवि माघ, श्रीहर्ष आदि कवियों का नाम लिया जा सकता है। इन कवियों में भारवि निःसन्देह एक उच्चकोटि के कवि है। उनका एकमात्र महा काव्य किरातर्जुनीयम् संस्कृत साहित्य के वृहद्त्रयी के अन्तर्गत अग्रणी रूप में रखा जाता है।

इस इकाई के माध्यम से आप सर्वशास्त्रमय कवि कुल भूषण भारवि का सम्पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस इकाई के अन्तर्गत भारवि के जीवन-परिचय ,उनके कृतित्व एवं महाकाव्य के रूप में उनके द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् का स्वरूप समझ सकेगें ।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई की सहायता से आप -

- भारवि के जीवन परिचय का अध्ययन कर सकेगें।
- इसके माध्यम से आप किरातर्जुनीयम् नामक महाकाव्य से परिचित हो सकेगें।
- इसके अध्ययन से आप महाकाव्य के लक्षणों को बता सकेगें।
- इसकी सहायता से आप भारवि विषयक प्रश्नों के उत्तर दे सकेगें ।

1.3 भारवि - परिचय एवं समय

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचयिता के रूप में तथा संस्कृत महाकाव्यों के इतिहास में कालिदास के बाद भारवि का नाम विख्यात है। इन्होंने महाकाव्य के विचित्र मार्ग का प्रवर्तन किया जिसमें भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष पर ही अधिक बल रहता है। पाण्डित्य-प्रकर्ष की अभिव्यक्ति और मूल विषय का त्याग करके लम्बे वर्णनों में उलझ जाना इस मार्ग की विशिष्टता है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति अश्वघोष में भी थी किन्तु वे विषय का त्याग नहीं करते थे। भारवि के बाद के कवियों ने दोनों को अपनाया। इसलिए भारवि का एक विशिष्ट स्थान है।

1.3.1 भारवि का जीवन वृत्त

संस्कृत के अन्य महान् कवियों के समान भारवि के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में भी अनेक किंवदन्तियों और अप्रामाणिक सूचनाओं का समुदाय प्राप्त होता हैं दण्डी के द्वारा रचित 'अवन्तिसुन्दरीकथा' नामक ग्रन्थ का कुछ अंश प्राप्त हुआ है, जिसका एक नाम अवंतिसुन्दरी

कथासार भी है। उसमें भारवि के विषय में कुछ महत्वपूर्ण सूचना दी गयी है। कहा गया है कि भारवि दण्डी के प्रपितामह थे और उनका वास्तविक नाम 'दामोदर' था। भारवि के पिता का नाम नारायणस्वामी था। कुछ विद्वानों का कथन है कि उक्त दामोदर भारवि के अनुज थे और दण्डी इन्हीं दामोदर के प्रपौत्र थे। दामोदर ने भारवि को माध्यम बनाकर राजा विष्णुवर्धन से सम्पर्क किया था। भारवि को वहाँ 'महाशैव' कहा गया है। किरातार्जुनीय में भारवि ने शिव की महिमा का वर्णन भी किया हैं भारवि के मित्र विष्णुवर्धन की पहचान विद्वानों ने सत्याश्रय (चालुक्यनरेश पुलिकेशन् द्वितीय) के अनुज के रूप में की है (615ई० के लगभग)।

'किरातार्जुनीयम् ' के द्वितीय सर्ग के श्लोक 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' (30) को लेकर कई कथाएँ प्रचलित हैं जिनमें भारवि का योगदान कहा गया है। भारवि को सभी विद्वान् दाक्षिणात्य मानते हैं। सदारऋजन राय ने भारवि द्वारा समुद्र में सूर्यास्त-वर्णन करने के कारण भारवि को पश्चिम समुद्र (अरब सागर) के तट का निवासी सिद्ध किया है।

1.3.2 भारवि का समय

भारवि का समय मुख्यतः वाह्य प्रमाणों पर ही आश्रित है। अपनी एकमात्र रचना 'किरातार्जुनीयम्' में ऐसा कोई संकेत इन्होंने नहीं दिया है जिससे इनके काल का निश्चय हो सके। बाह्य प्रमाणों में सबसे महत्त्वपूर्ण ' ऐहोल का शिलालेख ' है जो कर्नाटक राज्य के बादामी जिले में मेगुती नामक ग्राम के निकट एक पहाड़ी पर बने जैन मन्दिर की बाहरी दीवार पर अंकित हैं। इसका समय 634 ई० (' शकसंवत् 556) हैं रविकीर्ति नामक कवि ने इस मन्दिर (जिनवेश्म) का निर्माण करके कुछ ऐतिहासिक महत्त्व के श्लोक की रचना कर इसमें उत्कीर्ण कराये थे। उनमें अन्तिम (37 वाँ) पद्य इस प्रकार है-

येनायोजि नवेऽष्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः।।

यहाँ रविकीर्ति ने अपने आपकों काव्य के क्षेत्र में कालिदास और भारवि की कीर्ति का आश्रय लेने वाला कहा है। स्पष्टतः भारवि 634ई० तक पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे। इस प्रसिद्धि की अवधि के विषय में विद्वानों ने अनुमान किये हैं। कीथ का मत है कि उन्हें 550 ई० के आसपास माना जा सकता है। सरदारऋजन राय ने उक्त संकेत से 150-200 वर्ष पूर्व अर्थात् पाँचवीं शताब्दी ई० में भारवि को मानने का सुझाव दिया है। किन्तु अन्य स्रोतों से इस विषय पर अधिक स्पष्टता प्राप्त होती है। दण्डि-कृत 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के एक अंश का उद्धरण जो, हरिहरशास्त्री ने निम्नांकित रूप में किया है ,जिसमें दामोदर द्वारा भारवि के माध्यम से विष्णुवर्धन नामक राजा की कृपा प्राप्त करने का निर्देश है - यतः कौशिककुमारो (दामोदरो) महाशैवं महाप्रभाव प्रदीप्तभांस भारवि रविमिवेन्दुरनुरुध्य दर्श इव पुण्यकर्माणि विष्णुवर्धनाख्ये राजसूनौ प्रणयमन्वबध्नात्। विष्णुवर्धन चालुक्य-नरेश सत्याश्रय (पुलिकेशिन्-द्वितीय) का अनुज था, उसने सेनापति के रूप में नर्मदा - तट पर हर्षवर्धन को पराजित किया था। उसी ने गोदावरी जिले में पिष्टपुर को राजधानी बनाकर पूर्वी चालुक्य - वंश की स्थापना 615 में की थी। भारवि से

मित्रता के कारण विष्णुवर्धन ने उन्हें अपना सभा-पण्डित बनाया था। इस प्रकार 615ई॰ के आस पास भारवि का भी समय माना जा सकता है। 634ई॰ में उनकी पर्याप्त प्रसिद्धि के कारण रविकीर्ति ने उनका उल्लेख किया भारवि के समय के निर्धारण का एक अन्य सूत्र भी उक्त 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से प्राप्त होता है। काञ्ची के पल्लव-नरेश सिंहविष्णु (शासनकाल 575-600ई॰) ने भी भारवि को आश्रय दिया था। बाद में सिंहविष्णु के पुत्र महेन्द्रविक्रम ('मत्तविलासप्रहसन' का लेखक) के आश्रय में भी भारवि रहे। भारवि को मनोरथ नामक पुत्र था। यही मनोरथ दण्डी के पितामह थे। यह सूचना 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से प्राप्त होती है। एक दानपत्र से भी भारवि के काव्य का सम्बन्ध प्राप्त होता है। कोंकण के गंग - नरेश अविनीत का पुत्र दुर्विनीत (समय 580ई॰) था जिसने 'बृहत्कथा' (गुणाढ्य-कृत पैशाची भाषा में निबद्ध लोककथा - संगह) का संस्कृत रूपान्तर 'शब्दावतार' के नाम से किया था तथा किरातार्जुनीयम् के 15 वें सर्ग (चित्रकाव्य से पूर्ण सर्ग) पर टीका भी लिखी थी। यह दानपत्र 'मैसूर आर्कियोलॉजिकल रिपोर्ट (1916) में पृष्ठ 36 पर मुद्रित है - **''श्रीमत्कोंकणमहाराजाधिराजस्य अविनीतनाम्नः पुत्रेण शब्दावतारकारेण देवभारती निबद्ध - बृहत्कथेन किरातार्जुनीयपञ्चदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीतनामधेयेन''। इन** सूत्रों से यह अनुमान हो सकता है कि भारवि का समय 550 ई॰ से 620 ई॰ के बीच होगा। अष्टाध्यायी की वृत्ति 'काशिका' (660ई॰) में जयादित्य ने किरातार्जुनीय के एक पद्यखण्ड (3/14) ' संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः का उद्धरण दिया है। महाकवि माघ ने अपने 'शिशुपालवध' की रचना स्पष्टतः भारवि के महाकाव्य की ख्याति से प्रेरित होकर प्रतिस्पर्धा में ही की थी। माघ का समय 675 ई॰ के आसापास माना जाता है। अतः भारवि को इन रचनाओं के कुछ पूर्व उक्त कालावधि में रखा जा सकता है। बाण द्वारा अपने हर्षचरित के प्रस्तावना में भारवि का उल्लेख न होना कुछ विद्वानों को खटकता है किन्तु इसे दो कारणों से स्पष्ट किया जा सकता है। पहली बात यह है कि बाण के समय (7वी शताब्दी का पूर्वार्ध) में उत्तरभारत में भारवि अधिक विख्यात नहीं हुए होंगे। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाण के आश्रयदाता महाराज हर्षवर्धन के शत्रु पुलिकेशिन् के अनुज की राजसभा में भारवि थे। अतः बाण ने उनका उल्लेख नहीं किया।

1.3.3 भारवि का ग्रन्थ

किरातार्जुनीयम् , यह भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। विचित्र मार्ग या कलावाद का प्रवर्तन करने वाले इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। इसका कथानक महाभारत के वनपर्व के कुछ अध्यायों पर आश्रित है। वनवास-काल में अर्जुन द्वारा कौरवों पर विजय-प्राप्ति के लिए इन्द्रकील पर्वत पर जाकर तपस्या करने, किरात-वेश में आये हुए शिव से युद्ध करने एवं प्रसन्न हुए शिव से पशुपत अस्त्र की प्राप्ति की मुख्य कथा इसमें निरूपित है। इसीलिए इसका शीर्षक है- किरातर्जुनीयम्। किरातः (किरातवेशधारी शिवः) च अर्जुनश्च-किरातार्जुनौ (द्वन्द्वसमास) तावधिकृत्य कृतं काव्यं किरातर्जुनीयम् (द्वन्द्वाच्छः से छ अर्थात् ईय प्रत्यय)। इसके कई सर्ग मुख्य कथा को छोड़कर कलात्मक वर्णनों में लगाये गये हैं। 15 वें सर्ग में युद्ध के क्रम में

चित्रकाव्य की छटा दिखायी गयी है। इस महाकाव्य में सर्गों की कथा इस प्रकार है-द्वैतवन में वनेचर का आकर युधिष्ठिर को दुर्योधन की प्रजा-पालन-नीति का वर्णन सुनाना, द्रौपदी का उत्तेजनापूर्ण भाषण (सर्ग-1) युधिष्ठिर और भीम का वार्तालाप, भीम द्वारा द्रौपदी का समर्थन करते हुए पराक्रम की महत्ता दिखाना, युधिष्ठिर का प्रतिवाद (सहसा विदधीत न क्रियाम्), व्यास का आगमन (सर्ग-2); व्यास द्वारा अर्जुन को शिव की आराधना करके पाशुपतास्त्र प्राप्त करने का उपदेश, योग-विधि का निरूपण करके व्यास का अन्तर्धान होना, व्यास द्वारा प्रेषित यक्ष के साथ अर्जुन का प्रस्थान (सर्ग-3) इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन का पहुँचना, शरद् ऋतु का मनोरम वर्णन (सर्ग-4); हिमालय का वर्णन तथा यक्ष का अर्जुन को इन्दिय-संयम का उपदेश (5); अर्जुन की तपस्या, विघ्न डालने के लिए इन्द्र द्वारा प्रेषित अप्सराओं का आगमन (6); गन्धर्वों तथा अप्सराओं के विलासों का वर्णन, वन-विहार, पुष्पचयन (7); गन्धर्वों और अप्सराओं की उद्यान क्रीड़ा तथा जल-क्रीड़ा का मोहक वर्णन (8); सांयकाल, चन्द्रोदय, मान मानभश् , दूती-प्रेषण, सुरति तथा प्रभात का वर्णन (9); अप्सराओं की चेष्टाएँ, उनकी विफलता (सर्ग-10); मुनि-रूप में इन्द्र का आगमन, इन्द्रार्जुन-संवाद, इन्द्र का अर्जुन को शिवाराधना का उपदेश (11); अर्जुन की तपस्या, तपस्वियों का शिव को प्रेरित करना, अर्जुन को देवताओं का कार्यसाधक जानकर 'मूक' नामक दानव का शूकर रूप में अर्जुन वध के लिए आगमन, किरातवेशधारी शिव का आगमन (12); शूकर (मूक दानव) पर शिव और अर्जुन दोनों का बाण-प्रहार, दानव की मृत्यु, बाण के विषय में शिव के भेजे गये वनेचर की अर्जुन के प्रति उलाहना पूर्ण कथन (13) वनेचर के लिए अर्जुन की उक्ति तथा किरातवेशधारी शिव का युद्ध हेतु आना (14); युद्ध का चित्रकाव्य के रूप में वर्णन (15) शिव और अर्जुन का अस्त्रयुद्ध, मल्लयुद्ध (16); शिव और उनकी सेना के साथ अर्जुन का युद्ध (17) बाहुयुद्ध के बाद शिव का अपने मूल रूप में प्रकट होना, इन्द्रादि का आगमन, अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति, इन्द्रिादि द्वारा भी अर्जुन को विविध अस्त्रों का प्रदान, अर्जुन का युधिष्ठिर के पास आगमन (सर्ग-18)।

स्पष्टतः इस महाकाव्य में प्रकृति-वर्णन, क्रीड़ादि-वर्णन एवं युद्ध-वर्णन के द्वारा मुख्य कथानक का विस्तार किया गया है। इस महाकाव्य का आरम्भ 'श्रियः' शब्द से होता है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में 'लक्ष्मी' शब्द भी प्रयुक्त है। इस प्रकार मांगलिक शब्द का आदिमध्यावसान में प्रयोग करके महाकाव्य को मांगलिक बनाया गया है। कलावादी भारवि ने सुन्दर हृदयावर्जक संवादों, काल्पनिक चित्रों तथा रमणीय वर्णनों से इसे भरकर नवीन दिशा का प्रवर्तन किया है। श्रंगार चेष्टाओं के वर्णन में मुक्तक काव्य की चित्रात्मकता इसमें उन्होंने भरी है। चतुर्थ से एकादश सर्ग तक के अन्तराल को ऐसे ही वर्णनों से भरा गया है। युद्ध का लम्बा वर्णन भी महाकाव्य की विशालता को भले ही रेखाकिंत करे,फिर भी उसमें कविता की आत्मा तिरोहित हो गयी है।

इस महाकाव्य के नायक अर्जुन धीरोदात्त कोटि के हैं। वीर रस प्रमुख है, श्रंगार रस अंश के रूप में है। इस महाकाव्य पर मल्लिनाथ ने टीका लिखी है, 15 वें सर्ग पर दुर्विनीत ने भारवि के काल में ही टीका लिखी थी। माघ ने इस काव्य की सभी विशिष्टताओं का अनुकरण करके

'शिशुपालवध' की रचना की। इस महाकाव्य के प्रथम तीन सर्ग बहुत लोकप्रिय हैं। इसमें मुख्य रूप से भारवि का राजनीति-ज्ञान प्रकट हुआ है।

1.3.4 भारवि का साहित्यिक वैशिष्ट्य

भारवि मुख्य रूप से कलावादी कवि हैं जिनका ध्यान काव्य के बहिरश: पर अधिक रहा है। अर्थपक्ष में गम्भीरता तथा सार्वजनीनता का निवेश भी उन्होंने किया है। चित्रकाव्य का प्रयोग करने वाले वे प्रथम संस्कृत कवि हैं। कृत्रिम भाषा का प्रयोग करते हुए उन्होंने यह प्रकट किया है कि संस्कृत काव्य कितना दुरूह हो सकता है। किन्तु ऐसी शब्द-क्रीड़ा उनके काव्य में सीमित है, केवल 15वें सर्ग में चित्रकाव्य है और 5वें सर्ग में यमक का प्रयोग है। सामान्यतः भारवि वैदर्भी रीति के कवि हैं जिसमें अल्पसमासों का प्रयोग होता है। व्याकरणशास्त्र के दुरूह नियमों के प्रति कवि की अभिरुचि अवश्य है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी भारवि में बहुत अधिक है। किन्तु इस समस्त कृत्रिमता के मध्य उनमें भावों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता है जो सामान्य स्थलों में विपुल रूप से प्राप्त होती हैं भावों के अनुसार ही इन्होंने काव्य-कला का प्रयोग किया है, अर्थगौरव से पूर्ण सामान्य उक्तियों में प्रसादगुण है तो चित्रात्मक वर्णनों में ओजगुण के प्रयोग में भी कवि को संकोच नहीं है। अनेक अलंकारों और छन्दों का निवेश भी कवि ने भावों की आवश्यकता के अनुरूप ही किया है। इनकी शैली के विषय में जितना अन्य विद्वानों ने कहा है, उससे न्यूनतर स्वयं भारवि ने नहीं कहा। इससे प्रकट होता है कि कवि अपनी भाषा-शैली के प्रति पूर्ण जागरुक है।

भारवि के विषय में कुछ उक्तियाँ प्रचलित हैं जैसे-भारवेरर्थगौरवम्, भारवेरिव भारवेः, प्रकृतिमधुरा भारविगिरः (अभिनन्द), नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः (मल्लिनाथ) इत्यादि इनमें भारवि की शैली की स्वाभाविक मधुरता के अतिरिक्त बाह्य-रूक्षता तथा अन्तः सरसता एवं अर्थगौरव की प्रशंसा की गयी है। इन पर विचार किया जायेगा। स्वयं भारवि ने अपने काव्य के विविध पक्षों में वचोविन्यास के विशिष्ट गुणो का निर्देश किया है जैसे-

(1) स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं
विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ।। (किरातार्जुनीय 1/3)

वनेचर शब्द-सौष्ठव तथा औदार्य (अर्थसम्पत्ति) से शोभा पाने वाली निश्चित अर्थ से युक्त वाणी का प्रयोग कर रहा था। वाणी में शब्द की सामर्थ्य तथा अर्थ की समग्रता तो हो ही,साथ ही साथ विषय-वस्तु प्रमाण-सिद्ध हो अर्थात् असत्य न हो।

(2) स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ।। (किरात. 2/27)

यहाँ भीम की वाणी की प्रशंसा में युधिष्ठिर कहते हैं। कि तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन है (प्रसभं वक्तुमुपक्रमेत कः, 2/28) जिसके शब्दों में स्फुटता (स्पष्टता) हो, अर्थ-गौरव (अर्थ का प्राचुर्य) विद्यमान हो, बातों में पृथगर्थता (पुनरुक्ति का अभाव या परस्पर विरोध का अभाव) हो और शब्दों की परस्पर आकांक्षा (सामर्थ्य) भी उपस्थित हो। भाषा के इन गुणों का भारवि ने उपदेश

ही नहीं दिया है,अपितु पालन भी किया है।

(3)विविक्तवर्णाभरण सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती
प्रवर्तन नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ।। (किरात० 14/3)

यहाँ अर्जुन किरातवेशधारी शिव से कहते हैं कि परस्पर असंकीर्ण वर्णो के आभूषण से युक्त, सुनने में सुखद (श्रुतिकटु-दोष से रहित), शत्रुओं के मन को भी प्रसन्न करने वाली तथा प्रसाद-गुण एवं अर्थगाम्भीर्य से युक्त वाणी पुण्यकर्म के बिना प्रवृत्त नहीं होती। काव्य में भी ऐसी भाषा-शैली वाञ्छनीय है। इसी क्रम में अर्जुन आगे भी कहते हैं -

(4) स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसम्पदं विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः।
इति स्थितायां प्रतिपुरुषं रुचौ सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः।। (किरात० 14/5)

अर्थात् कुछ लोग वाणी की वाच्यार्थ-सम्पत्ति की प्रशंसा करते हैं, तो दूसरे विद्वान् केवल उक्ति (अर्थात् शब्द-सामर्थ्य) की प्रशंसा करते हैं इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के पृथक्-पृथक् विचारों की स्थिति में सभी लोगों को प्रसन्न करने वाली (शब्दार्थसमन्वित वाणी) अत्यन्त दुर्लभ होती हैं भारवि ने ऐसी ही वाणी की काव्य का उत्कर्ष समझा है।

कहीं-कहीं भारवि ने शास्त्रीय वैदुष्य का प्रदर्शन करते हुए सामान्य विषयों को भी गम्भीर रूप दे दिया है। किरातार्जुनीयम् के सत्रहवें सर्ग में वाणों के आधार पर अर्जुन की विजय-कामना की तुलना वैयाकरणों की शब्दाश्रित अर्थस्फुरण-कामना से की गयी हैं यह पद्य भारवि की अर्थगम्भीरता का उत्कर्ष प्रस्तुत करता है-

संस्कारवत्त्वद् रमयत्सु चेतः प्रयोग-शिक्षागुण-भूषणेषु।
जयं यथार्थेषु परेशु पार्थः शब्देषु भावार्थमिवाशंषसे ।। (किरात० 17/6)

भारवि की काव्यशैली सामान्यतः वैदर्भी है, जिसमें समाससाहित्य या अल्पसमासता रहती है किन्तु कालिदास की शैली के समान कोमलता, पदलालित्य और परिष्कार का इसमें अभाव है। पाण्डित्य और कवित्व दोनों के प्रति समान आकर्षण के कारण भारवि भावों के सौन्दर्य पर तो ध्यान रखते हैं किन्तु शब्दों की मधुरता का बलिदान इनके पाण्डित्य के निकशोपल पर हो जाता हैं राजनीति-जैसे शुष्क विषय हो या शरद्-वर्णन-जैसा सरस विषय आये, भारवि की भाषा-शैली रूक्षता नहीं छोड़ती। यही कारण है कि मल्लिनाथ ने इनकी वाणी को 'नारिकेलफलसम्मित' कहा है। नारियल ऊपर से रूक्ष ही नहीं, परस्पर रेशों के संघटन के कारण अभेद्य भी होता है, उसकी अन्तः सरसता ऊपर से नहीं जानी जा सकती। वही बात भारवि के काव्य के बहिरश् में (भाषा-शैली में) निहित है । किन्तु ऊपरी रेशों को दूर हटाकर जब भावों के सौन्दर्य का साक्षात्कार किया जाता है तो चित्त प्रसन्न हो जाता है। एक ओर बहिरश् प्रभाव उत्पन्न कररने में समर्थ है, तो दूसरी ओर अन्तरश् चित्त को द्रवित करता है। द्रौपदी के उत्तेजक भाषण में कवि ने दोनों क्षमताएँ दिखायी हैं जैसे-

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती कचाचितौ विश्वगिवागजौ गजौ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ विलोकयुन्नुत्सहसे न बाधितुम् ।। (किरात. 1/36)

शब्दों में यमक का प्रयोग और भावों में युधिष्ठर को उपालम्भ-ये दोनों समान रूप से निविष्ट हैं। आप इन दोनों भाइयों (नकुल-सहदेव) की वर्तमान दुर्दशा देखकर भी अपने धैर्य और संयम को छोड़ नहीं पाते-आश्चर्य की बात है । इस उपालम्भ की पराकाष्ठा तब होती है जब द्रौपदी युधिष्ठिर को धनुष छोड़कर हवन-कार्य में जीवन बिताने का व्यङ्ग्य करती है (विहाय लक्ष्मीपलिक्ष्म कार्मुकं जटाधरः सऋजुहुधीह पावकम् 1/44) । पात्रों के अनुरूप ओजस्विता और शमन का आधान करने में भारवि की प्रवीणता अनुपम है, द्रौपदी तथा भीम के ओज- पूर्ण वचन पाठक को उत्तेजित करते हैं तो युधिष्ठर और व्यास के वचनों में शान्ति का निवेश है । इनमें कवि की नीतिकुशलता सर्वत्र प्रकट हुई है । राजा का आदर्श युधिष्ठिर की दृष्टि में मृदुता और उग्रता का यथावसर प्रयोग ही है-

समवृत्तिरुपैति मार्दवं, समये यश्च तनोति तिग्मताम् ।
अधितिष्ठति लोकमोजसा, स विवस्वानिव मेदिनीपतिः।। (किरात॰ 2/38)

'किरातार्जुनीय' के चतुर्थ सर्ग में शरद्-ऋतु का भव्य वर्णन करते हुए इसी शैली में कवि ने कतिपय सुन्दर शब्दचित्र अंकित किये हैं। वर्षा के कारण जो मार्ग पहले टेढ़े-मेढ़े थे, अब शरद् में खेतों का जल सूख जाने से सीधे हो गये है; उन मार्गों पर समीपवर्ती (अगल-बगल) पौधों को बैल खा गये; गाड़ियों के पहियों के चिह्न (लीक) बन जाने से कहीं-कहीं उन मार्गो पर कीचड़ घनी हो गयी है और लोगों के निरन्तर आाने-जाने से अब वे मार्ग स्पष्ट दिखायी पड़ रहे हैं-

पपात पूर्वां जहतो विजिह्मतां, वृशोपभुक्तान्तिकसस्यसम्पदः।
रथाश्सीमन्तित-सान्द्रकर्दमान्, प्रसक्तसम्पात-पृथक्कृतान्पथः।। (किरात॰4/18)

इसी प्रकार हरे-हरे सुग्गों के अपनी लाल चोंचों से धान की पीली बालियां को लेकर उड़ने में कवि ने उस इन्द्रधनुष के सौन्दर्य की उपमा दी है-

मुखैरसौ विद्रुमश्लोहितैः शिक्षाः पिषशी कलमस्य बिभ्रती ।
शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला, धनुःश्रियंगोत्रभिदोऽनुगच्छति।।(किराता॰ 4/36)

इस महाकाव्य के पंचम सर्ग में द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग करते हुए कवि ने 'यमक' अलंकार का ऐसा प्रयोग किया है कि माघ इसके अनुकरण के लिए उत्सुक हो उठे। हिमालय का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं -

पृथुकदम्ब-कदम्बक-राजितं ग्रथित-माल-तमाल-वनाकुलम् ।।
लघु-तुषार-तुषारजलश्च्युतं धृत-सदान-सदानन-दन्तिनम् ।।

अर्थात् यह हिमालय बड़े-बड़े कदम्ब पुष्पों के समूह से शोभित है, पंक्तियों में निबद्ध तमालवनों से भरा है, यहाँ बूँद-बूँद करके हिमजल चू रहा है और सुन्दर मुखवाले (सदानन) मतवाले (सदानन) हाथियों को यह धारण करता है । इस प्रसंशा में एक पद्य पाद-यपक के रूप में है- सकलहंसगणं शुचि मानसम् (सभी हंस-गणों से युक्त पवित्र मानसरोवर) तथा सकलहं सगणं शुचिमानसम् (अपनी पत्नी पार्वती से विवाद किये हुए, प्रथम आदि गुणों के साथ, पवित्र मनवाले भगवान् शिव को) । इन दोनो को हिमालय धारण करता है । (5/13)

इसी सर्ग में एक प्रसिद्ध उपमा प्रयुक्त है जिसमें यक्ष अर्जुन को समझाता है कि यहाँ स्थल-कमल

के पराग आँधी (वात्या, चक्रवात) के द्वारा इस प्रकार उड़ाये जाते हैं कि आकाश मण्डलाकार बन जाता है । और स्वर्ण से निर्मित छत्र का रूप धारण कर लेता है -

उत्फुल्ल-स्थल-नलिनी-वनादमुष्म
दुद्धूतः सरसिज-सम्मभवः परागः।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्ता
दाधत्ते कनकमयातपत्र-लक्ष्मीम्।। (किरात॰ 4/39)

इस उपमान के कारण कवि को 'आतपत्र-भारवि' भी कहा गया है। पंचम सर्ग में कवि ने अनेक छन्दों के प्रयोग की क्षमता भी दिखायी है। जैसे-द्रुतविलम्बित (1-16), औपच्छन्दसिक (17), क्षमा (18), प्रमिताक्षरा (20), प्रभा (21), रथोद्धता (22), जलधरमाला (23), प्रहर्षिणी (26), जलोद्वतगति (27) वसन्ततिलका (28-30), पुष्पिताग्रा (32), शालिनी (36), वंशपत्रपतित (43), मालिनी (52),। भारवि के द्वारा प्रयुक्त वंशस्थ छन्द की प्रशंसा क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलक' में की है। इस छन्द का उपयोग कवि ने प्रथम, चतुर्थ, अष्टम, चतुर्दश -इन सर्गों में मुख्य छन्द के रूप में किया हैं मुख्य छन्द के रूप में इन्होंने वियोगिनी (सर्ग-2), उपजाति (सर्ग-3,16,17), प्रमिताक्षरा (सर्ग-6), प्रहर्षिणी (सर्ग-7), स्वागता (सर्ग-9), पुष्पिताग्रा (सर्ग-10), अनुष्टप (सर्ग-11 तथा 15,) उद्गता (सर्ग-12), औपच्छन्दसिक (सर्ग-13 में 34वें पद्य तक, 35 से 70 तथा रथोद्वता) का प्रयोग किया है, सर्गान्त में छन्द के परिवर्तन की पद्धति भी रखी है। अठारहवें सर्ग में भी पंचम सर्ग के समान अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों के वैविध्य का प्रदर्शन संस्कृत कवियों में सर्वप्रथम भारवि ने ही में किया हैं यह उनके पाण्डित्य और विचित्र मार्ग के प्रवर्तन का परिचायक है।

अलंकारों का स्वाभाविक वर्णन ऊपर दिये गये है। हिमालय-वर्णन के प्रसंग में 'रूपक' का निम्नांकित पद्य में बहुत सुन्दर प्रयोग है-

श्रीमल्लताभवनमोषधयः प्रदीपाः
शय्या नवानि हरिचन्दन-पल्लवानि।
अस्मिन् रतिश्रमनुदश्च सरोजवाताः
स्मर्तुं दिशन्ति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः।। (किरात॰ 4/28)

अर्थात् यहाँ शोभासम्पन्न लताकुंज ही भवन हैं, ओषधियाँ (जड़ी-बूटियाँ) दीपक हैं, हरिचन्दन (कल्पवृक्ष) के नये-नये पल्लव शय्या हैं; रति के श्रम को दूर करने वाले कम वन-जन्य समीरण सुरसुन्दरियों को स्वर्ग का स्मरण करने ही नहीं दे रहे हैं। भाव यह है कि हिमालय में प्राप्त भोग-सामग्री स्वर्ग से भी बढ़कर है।

प्रयत्न-साध्य अलंकारों में अर्थालंकार नहीं, शब्दालंकार ही हैं जो 'चित्रकाव्य' के रूप में प्रयुक्त हैं। इस दृष्टि से शिव और अर्जुन विचित्र युद्ध का वर्णन करने के लिए पंचदश सर्ग नियुक्त किया गया है। इस सर्ग में कहीं एकाक्षर पद्य हैं (श्लोक-14), कहीं दो अक्षरों का पद्य है (5,38); कहीं पादादि-यमक है (10), तो कहाँ पाद के आदि-अन्त में यमक है (8, माविह्मसिष्ट समरं समरन्तव्यसंयतः) कहीं गोमूत्रिकाबन्ध है (12) तो कहीं सर्वतोभद्र है (25); कहीं पूर्वार्ध

और उत्तरार्ध एक ही है (16 तथा 50); कहीं एक ही श्लोक सीधा-उलटा एक समान है (18 तथा 20) कहीं चारों पादों की एकरूपता से महायमक है (52 विकाशमीयुर्जगतीषमार्गणाः-चारों पादों में यही है); कहीं दो अर्थों वाले (16,50,), कहीं तीन अर्थों वाले (42) और कहीं चार अर्थों वाले पद्य भी हैं (52)। इस प्रकार भारवि ने प्रयत्नसाध्य चित्रालंकार का व्यापक रूप से इस सर्ग में प्रयोग किया है।

यहाँ एकाक्षर (केवल एक व्यंजन 'न') प्रयोग वाले पद्य का उदाहरण दिया जाता है-

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनों नानेना नुन्ननुन्ननुत्॥ (किरात० 14/14)

अर्थ इस प्रकार है- (नानाननाः) हे अनेक मुखवाले शिवसैनिको, (ऊननुन्नः) निकृष्ट व्यक्ति के द्वारा आहत पुरुष (ना न) वस्तुतः पुरुष नहीं है। (नुन्नोनः) जिसने न्यूनता को नष्ट कर दिया है ऐसा (ना ननु अना) पुरुष वस्तुतः पुरुष से भिन्न अर्थात् देवता हैं। (न-नुन्नेनः) जिसका स्वामी अनाहत या अक्षत है वह (नुन्नः अनुन्नः) आहत होने पर भी आहत नहीं है। (नुन्ननुन्ननुत्) अत्यधिक आहत व्यक्ति को क्षति पहुँचाने वाला (न अनेनाः) अपराध-मुक्त नहीं हो सकता।

इसी प्रकार पूर्वार्ध की आवृत्ति उत्तरार्ध के रूप में होने से दो-दो अर्थ निकलते हैं-

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं ससारवणोऽयुगलोचनस्य।
घनं विदार्यार्जुनबाणपूर्गं ससार बाणो युगलोचनस्य॥ (किरात०15/50)

'इधर त्रिलोचन शिव का शक्ति - सम्पन्न (संसार) और ध्वनियुक्त बाण अर्जुन के घने बाण-समूह को छिन्न-भिन्न करके व्याप्त हुआ और उधर द्विलोचन अर्जुन का बाण घने अर्जुन वृक्ष, बाणवृक्ष और सुपारी (पूग) के वनों को चीर कर व्याप्त हुआ। एक पद्य में जो चारों चरण समान हैं वहाँ विकासमीयुर्जगतीशमार्गणाः (पद्य-52)-के चार अर्थ इस प्रकार हैं - (1) जगतीश - मार्गणाः विकासम् ईयुः = पृथ्वीपति अर्जुन के बाण विस्तार का प्राप्त हुए। (2) जगति ईशमार्गणाः विकासम् ईयुः-संसार में शिव के बाण वि-कास (विषम गति) को प्राप्त हुए अर्थात् बिखर गये, टूट गये। (3) जगती-स-मर-गणाः विकासम् ईयुः = संसार को दुःख देने वाले (जगतीं ष्यन्ति तनूकुर्वन्ति इति) दानवों को मार डालने वाले शिवगण प्रसन्न हुए। (4) जगतीश-मार्गणाः वि-कासम् ईयुः-जगती के स्वामी शिव को ढूँढ़ने वाले (मार्गणाः) देवादि-समूह पक्षियों के स्थान पर (वि = पक्षी, काश = स्थान) अर्थात् आकाश में आ गये।

इस प्रकार भारवि ने बौद्धिक व्यायाम के रूप में चित्रालंकार का प्रयोग करके संस्कृत भाषा की उस क्षमता का प्रकर्ष दिखाया है जो संसार के अन्य किसी भाषा में नहीं है। शब्द-विश्लेषण-शास्त्र (व्याकरण) का इसमें प्रभूत योगदान है। भारवि की शास्त्रगत व्युत्पत्ति के अतिरिक्त लोकनुभव का प्रकृष्ट परिचय उनकी सूक्तियों में प्राप्त होता है। उनके सुभाषित शास्त्रों के पाण्डित्य से मण्डित तथा व्यापक अनुभूतियों से समन्वित हैं। उनमें नीति, राजनीति तथा सामान्य जीवन से सम्बद्ध सूक्तियों का भाण्डार है। इन सभी में 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार निहित है। यहां कुछ सामान्य सूक्तियों के उद्धरण दिये जाते हैं -

(1) **हितं मनोहरि च दुर्लभं वचः** (1/4) - ऐसी वाणी दुर्लभ है जो हित कर होने के साथ मन

के अनुकूल भी हो ।

(2) समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोअपि सम महात्मभिः (1/5) - नीचों की संगति की अपेक्षा बड़े लोगों से विरोध कहीं अच्छा है क्योंकि उससे ऐश्वर्य की सिद्धि होती है।

(3) अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (1/23)- बलवान् व्यक्तियों से विरोध करने पर अंत तो कष्टकर होगा ही।

(4) वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि (8/39) प्रेम में गुण बसते हैं, किसी भौतिक पदार्थ में नहीं।

(5) आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (11/12)-इन्द्रियों के विषय तो अपनी प्राप्ति के ही समय अच्छे लगते हैं, अन्तिमावस्था में वे सन्ताप ही देते हैं।

(6) सुलभा रम्याता लोको दुर्लभं हि गुणार्जनम् (11/11)- संसार में सौन्दर्य की प्राप्ति कठिन नहीं है, किन्तु गुणों की प्राप्ति बहुत कठिन है।

(7) सहसा विधदीत न क्रियाम् (2/30) - बिना विचारे अर्थात् अकस्मात् कोई काम नहीं करना चाहिए।

(8) अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात्प्रह्लादते मनः (11/8) अपने बान्धव को कोई न भी पहचान पाये, तथापि उसे देखकरा मन में प्रबल हर्षोद्रेक होता ही है।

(9) दुरधिगमा हि गतिः प्रयोजनानाम् (10/40) किसी उद्देश्य का अंतिम परिणाम क्या होगा, यह जानना कठिन है।

(10) आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः (9/64-) सभी लोग अपने वर्ग का हित चाहते हैं।

(11) यथोलारेच्छा कि गुणेषु कामिनः (8/4)-कामी जन सर्वदा गुणों की क्रमशः अधिकता की खोज करते रहते हैं। (उपस्थित गुणों से संतुष्ट नहीं होते)।

(12) मात्सर्यरागोपहतामनां हि स्खलन्ति साधुश्वपि मानसानि। (3/53)-ईर्ष्याग्रस्त व्यक्तियों के चित्त सज्जनों के प्रति भी द्वेष-युक्त ही रहते हैं।

(13) वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः (9/16) सभी लोग निरापद स्थान पर चाहते हैं भारवि राजनीति के विशिष्ट ज्ञाता हैं। इसलिए तद्विषयक सूक्तियाँ भी उन्होंने अनेकानेक दी हैं। जैसे- प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः (3/17 युद्ध में विजय की प्राप्ति पराक्रम पर ही आश्रित होती है), तेजोविहीनं विजहाति दर्पः (17/16 निस्तेज के पास स्वाभाविकता कहाँ से होगी ?), अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः (1/33 क्रोध-शून्य व्यक्ति का न मित्र ही आदर करता है और न शत्रु ही उससे डरता है), ब्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिन: (1/30 वे मूर्ख अवश्य ही पराजय पाते हैं जो मायावियों के प्रति माया का प्रयोग नहीं करते), प्रकृतिः खुल सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया 2/21 बड़े लोगों का यह स्वभाव है जिसके कारण वे दूसरों के अभ्युदय को सह नहीं पाते)।

किरातार्जुनीयम् के द्वितीय सर्ग में नीति से पूर्ण अनेक पद्य है जैसे-ननु वक्तृविशेषनिः स्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः (2/5) अर्थात् विद्वान् लोग किसी की वाणी के गुणों का ग्रहण करते हैं, वे यह नहीं देखते कि यह किस वक्ता की वाणी है (स्त्री की बात है या पुरुष की)। अर्थगौरव से सम्पन्न यह पद्य बहुधा उद्धृत किया जाता है -

विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः। (किरात० 2/3)

नीतिशास्त्र बहुत दुर्गम है, फिर भी इसमें लोग प्रवेश करते ही हैं क्योंकि इसमें प्रवेश करने के लिए गुरुओं ने मार्ग बनाये हैं जलाशय में प्रवेश करने के लिए सोपान बना दिये जाने पर सभी लोगों का अवगाहन सरल हो जाता है वैसे ही भयावह नीतिशास्त्र की स्थिति हैं किन्तु वह व्यक्ति दुर्लभ होता है जो कृत्य (नीतिशास्त्र पक्ष में-करने योग्य कार्य, जलाशय पक्ष में-स्नानादि) के लिए उचित मार्ग बताये। नीतिक्षेत्र में उस व्यक्ति का महत्व है जो समय पर कर्तव्य के विषय में सही परामर्श दे। जलाशय के पक्ष में वह व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है जो जलाशय में सोपान बना दे, स्नान करने वाले तो अनेक होंगे।

बोध प्रश्न -

1. भारवि का समय मुख्यत: प्रमाणों पर आधारित है -

क. अन्तरंग ख. बहिरंग ग. अन्तरंग व बहिरंग घ . साक्ष्य

2. अवंतिसुन्दरी कथा के रचनाका हैं -

क. दण्डी ख. भारवि ग. बाण घ . माघ

3. रिक्तस्थान की पूर्ति कीजिए -

अ. भारवि का समय .... के बीच माना गया है।

ब. किरातार्जुनीयम् .... विभक्त है।

4. सही या गलत का निशान लगायें -

अ. दण्डी भारवि के पुत्र थे ( )

ब . भारवि का एक नाम दामोदर था ( )

1.4 महाकाव्य के रूप में किरातार्जुनीयम्

भारवी का केवल एकमात्र 'किरातर्जुनीयम् ' महाकाव्य ही उपलब्ध है और कुछ विचारकों का तो कहना है कि संस्कृत के महाकाव्यों में किरातार्जुनीयम् सर्वप्रथम है, जो तत्कालीन महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा की कसौटी पर अधिक से अधिक खरा उतरा है। इसी कारण महाकाव्यों की श्रेणी में यह महाकाव्य सर्वोपरि प्रतिष्ठित है। हम'किरातार्जुनीयम्' को एकदम यह स्थान प्रदान करें या न करें, पर इतना तो अवश्य है कि इस महाकाव्य ने अपनी प्रशंसित गुणों के कारण संस्कृतसाहित्य में विशिष्टस्थान प्राप्त किया है। और संस्कृतमहाकाव्य की वृहत्त्रयी (किरातर्जुनीयम्, शिशुपालवधम् एवं नैषधीयचरितम्) में इसका प्रमुख स्थान है तथा समस्त संस्कृत साहित्य में किरातर्जुनीयम् के समान दूसरा कोई ऐसा ओजपूर्ण तथा उग्र काव्य नहीं मिल सकेगा। आगे इसके महाकाव्यत्व के रूप को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है।

1.4.1 महाकाव्य का लक्षण

काव्य शास्त्र में रस सम्प्रदाय के आचार्य विश्वनाथ द्वारा रचित साहित्य दर्पण में महाकाव्य के स्वरूप तथा गुण-दोषों का शुद्ध वर्णन किया गया है जिसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते है:-

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वंशः क्षत्रियों वाऽपिधीरोदात्तगुणान्वितः ।।
एकवंशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा ।
श्रृंगार वीर शान्तानामेकोड्.गी रस इश्यते ।।
अड्.गानि, सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक सन्धयः ।
इतिसोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सदाश्रयम् ।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेश्वेकं च फल भवेत ।
आदौ नामस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।।
क्वचिद् निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।।
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायां सूचनं भवेत् ।
सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवन सागराः ।
सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वराः ।।
रणप्रयाणो पयममन्त्र पुत्रोदयादयः ।
वर्णननीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ।।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्ये तरस्य वा ।
नामास्य सर्गो पादेयकथया सर्गनाम तु ।।

अब इसका हिन्दी रूपान्तरण देखिए। सर्वप्रथम महाकाव्य सर्गों में विभक्त होता है। नायक कोई देवता होता है या उच्च वंशोत्पन्न क्षत्रिय होता है। वह धीरोदात्त प्रकृति का नायक होता है। एक वंश के कई राजा भी किसी एक महाकाव्य के नायक हो सकते हैं। प्रधान रस श्रृगाँर वीर या शान्त होता है और अन्य रस उसके सहायक होते हैं। कथावस्तु नाटक के समान होती है। वह ऐतिहासिक अथवा किसी सज्जन के सत्कर्म से सम्बन्धित हो सकती है। नाटक में वर्णित सभी संधियॉ भी महाकाव्य में होती हैं। पुरुषार्थ - चतुष्ट्य का वर्णन महान काव्यों में किया जाता है और उन चारों पुरुषार्थों में किसी एक पुरुषार्थ की प्राप्ति का लक्ष्य होता है। उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन प्रधान होता है। महाकाव्य के आरम्भ में त्रिविध मंगलाचरणें में से एक होना चाहिए। वर्ण्य विषय में कहीं दुर्जनों की निन्दा तो कहीं सज्जनों के गुणों की प्रशंसा। सन्ध्या ,सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, गोधूलि, दिन, अन्धकार, प्रेमियों का मिलन और वियोग, आखेट, ऋषि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, आक्रमण, विवाह, उपदेश, पुत्रजन्म आदि सभी प्रकार के वर्णन महाकाव्य में होते हैं। छन्द एक सर्ग में एक ही होता है। सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया जाता है। कभी 7 कभी एक ही सर्ग में अनेक छन्द भी द्रष्टव्य होते हैं। महाकाव्य में सर्गों की संख्या आठ से अधिक अथवा कम से कम आठ होनी चाहिए। ये सर्ग न तो बहुत छोटे हो और नहीं

बहुत बड़े सर्ग के अन्त में आगे आने वाली कथा की सूचना होती है। महाकाव्य का नामकरण कवि वर्ण्य विषय नायक या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर होता है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसके अन्तर्गत वर्णित विषय के आधार पर होता है।

1.4.2 किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व

महाकाव्य के पूर्वोक्त सभी लक्षण भारवि की रचना किरातार्जुनीयम् में मिलते हैं। नायक उच्च क्षत्रिय कुल में उत्पन्न अर्जुन है। अर्जुन धीरोदात्त नायक की कोटि में आते है। जैसा की दशरूपककार धीरोदात्त नायक का प्रतिपादन करते हुए कहते है कि-

महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावान विकत्थनः।
स्थिरो निगूढ़ाहंकारों धीरोदात्तों दृढ़व्रतः।।

अर्जुन शोक-क्रोध आदि से अभिभूत नहीं होते अति गम्भीर है, अनात्मश्लाघी है, स्थिर है, उनका अंहकार नियम से आच्छन्न हैं। तथा वे प्रतिभा से परिपूर्ण नायक है तथा अपने व्रत और वचन पर दृढ़ रहते है। इस महाकाव्य में प्रमुख रस वीर रस है तथा अपने कौशल से भारवि ने श्रृंगारादि रसों को बड़ी ही कुशलतापूर्वक प्रयोग किया हैं कथानक इतिहास अर्थात् महाभारत से लिया गया है। धर्म अर्थ काम और मोक्ष सभी पुरुषार्थो का वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है। किन्तु उनमें एक पुरुषार्थ अर्थ अर्जुन द्वारा शस्त्र प्राप्ति प्रमुख है। महाकाव्य के आरम्भ में 'श्री' शब्द का प्रयोग करके मंगल भी किया गया है और कथानक का निर्देश भी किया है।

श्रियः कुरुणामधिपस्य पालनीम्
प्रजासु वृत्तिं यमयुंक्त वेदितुम्।
स वर्णिलिंगी विहीतः समाययौ
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः।।

वनेचर के उल्लेख से आगे किरातरूप में उपस्थित होने वाले शिव का भी संकेत कर दिया गया है। स्थान-स्थान पर दुष्टों की निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा की गई है। जैसे प्रथम सर्ग में ही दुर्योधन के उत्तम नीतिका वर्णन करने के बावजूद खल के रूप में उसकी निन्दा भी की गई है। - विस{मानो दुरोदरक्षचमधितां तथापि जिह्वा। कथाप्रसंगेन तथासु कर्तु, भवन्ति माया विषु येन मायिन:।। आदि में उसकी कुशलता का वर्णन भी किया गया है। तथा एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। जैसे प्रथम सर्ग में वंशस्थ छन्द किन्तु महाकाव्य के लक्षण का पालन करते हुए अन्त में छन्द बदल गया है। प्रथम सर्ग के अन्तिम दो छन्द मालिनी और पुष्पिताग्रा छन्द है।

विधि समय नियोगादीप्ति संहार जिह्मम्
शिथिल वसुमगाधे मग्न मापत्ययोधौ।
रिपु तिमिर मुदस्यो दियमानं दिनादौ
दिनकृत मिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः।

सर्गो की लम्बाई न बहुत छोटी है और न बहुत लम्बी इस महाकाव्य में सबसे छोटा सर्ग चौथा सर्ग जो अड़तीस श्लोको का तथा सबसे लम्बा सर्ग एकादश-एक्यासी श्लोकों का है यह भी महाकाव्य के लक्षण के अनुरूप ही है। सर्गो की संख्या अठ्ठारह है जबकि महाकाव्य में आठ

से अधिक माना गया है। सर्गों के अन्त में आगे में आने वाले सर्ग की कथावस्तु का भी संकेत किया गया है। लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः से आगे की घटना का संकेत है। जहाँ तक वर्ण्य विषय का प्रश्न है सभी प्रकार का वर्णन जो महाकाव्य में होने चाहिए किरातार्जुनीय में पूरी तरह से वर्णित है। चौथे सर्ग में हिमालय का तथा ऋतुओं का पूरी तरिके से वर्णन मिलता है यह वर्णन पाचवे और छठवें सर्ग में इन्द्र और स्वर्ग का वर्णन है। नवें सर्ग में संध्या रात्री चन्द्रोदय और प्रभात का भी मनोहारी और विस्तृत चित्रण है। सातवे से लेकर दसवें सर्ग तक अप्सराओं का और उनकी काम चेष्टओं एवं संम्भोग श्रृंगार का वर्णन है। अर्जुन और किरातवेशधारी शिव के युद्ध का वर्णन पन्द्रहवें से अन्तिम सर्ग तक किया गया है। पन्द्रहवें सर्ग में शूकर का वर्णन मिलता हैं। मुनियों का भी वर्णन है तथा युद्ध के लिये शिव के सेना सहित रण-प्रयाण का वर्णन बड़ी विस्तार किया गया है। इस प्रकार वर्ण्य-विषय की दृष्टि से भी किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के सभी लक्षणों का पूरी तरह चरितार्थ करता है।

काव्य का नामकरण इसके नायक अर्जुन तथा किरातवेश धारी शिव के युद्ध की घटना के आधार पर किया गया है। प्रथम पद्य में ही किरात का उल्लेख है और अन्तिम पद्य में भी शिव किरात के रूपमें दिखाई देते हैं। इस प्रकार महकाव्य का नामकरण भी उचित है। सच तो यह है कि इस महाकाव्य को आदर्श मानकर ही बाद के कवियों अपने महाकाव्यों की रचना की है तथा माघ ने शिशुपालवध की और श्री हर्ष ने 'नैषधीयचरितम्' की रचना की।

बोध प्रश्न 2 -

अ . किरातवेशधारी हैं -

क. अर्जुन ख . शिव ग. युधिष्ठिर घ. कृष्ण

ब. महाकाव्य किसमें निबद्ध होता है -

क. सर्गों में ख . नि:श्वासों में ग. उल्लासों में घ. अंकों में

रिक्त स्थानों को भरिए -

स. अंगानि .... सर्वे नाटक सन्धय: ।

द .एकवृत्तमयै: .... अन्यवृत्तकै: ।

सही गलत का निशान लगाएं -

य . अर्जुन धीरोदात्त कोटि के नायक हैं ( )

व. किरातार्जुनीयम् वृहत्रयी की कोटि में आता है **( )**

1.5 सारांश

कालिदास द्वारा रचित रघुवंश महाकाव्य के रचना के उपरान्त किसी कवि में यह भाव शायद उत्पन्न भी नहीं हो रहा कि काव्य सृजन करें। परन्तु मध्यकाल में पुनः महाकवि भारवि ने जिस रूप में किरातार्जुनीयम् की रचना की वह अप्रतिम है। जिसमें पाण्डित्य-प्रदर्शन और कृतिम अलंकार-सन्निवेश प्रधान हो गया और प्रतिमा-समस्त काव्य की स्वाभाविक गौड़ हों गयी। उनके द्वारा उस पाण्डित्यपूर्ण शैली का प्रवर्तन किया गया जिसकी छटा कहीं न कही बाद के कवियों में यत्र-तत्र दृष्टव्य हो ही जाते है। इस इकाई के माध्यम से महाकवि भारवि के जीवन

तथा उनके कृतित्व - किरातार्जुनीयम् पर यथासम्भव प्रकाश डाला गया है जिसकी सहायता से आप कवि तथा कविकीर्ति का पूर्ण अध्ययन बड़ी ही सुगमता पूर्वक कर सकेगे, तथा कवि विषयक अनेक समस्याओं का समाधान कर सकेगे।

1.6 शब्दावली

भाराक्रान्त	-	भार से आक्रान्त
उच्चवंशोत्पन्न	-	उच्चवंश में उत्पन्न
अनात्मश्लाघी	-	आत्मश्लाघा से परे
आदिमध्यावसान	-	पूर्व मध्य तथा अन्त
अल्पसमासता	-	समास का कम प्रयोग
वैदूष्य	-	विद्वता
वैविध्य	-	विविधता

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 (अ) घ (ब) क (स) 550 से 620 ई0 द. सर्गों में य. (गलत) व. (सही)

2 . अ . ख ब. क स. सर्वेपि रसा: द. पद्यैरवसाने य.सही व . सही

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' संस्कृत साहित्य का इतिहास
2. आचार्य बलदेव उपाध्याय संस्कृत साहित्य का इतिहास
3. आचार्य विश्वनाथ साहित्य दर्पण

1.9 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

1. आचार्य धनंजय दशरूपक
2. महाकवि भारवि किरातार्जुनीयम्
3. डा॰ कपिलदेव द्विवेदी संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाकवि भारवि का काल निर्धारण करते हुए उनके जीवन पर प्रकाश डालिए।
2. सिद्ध कीजिए की-किरातार्जुनीयम् एक महाकाव्य है।

इकाई 2. किरातार्जुनीयम् - श्लोक संख्या 1 से 15 तक

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

वेद व्यास द्वारा रचित महाकाव्य महाभारत से सम्बन्धित एक कथा को एक महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत करना और वो भी संस्कृत साहित्य के वृहद्त्रयी के अन्तर्गत स्थान पाना उनमें भी सर्वश्रेष्ठ स्थान, महाकवि भारवि की ज्ञान - गरिमा को एक प्रतिष्ठित स्थान देता है। भारवि द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् महाभारत के वनपर्व के अर्जुनाभिगमन नामक खण्ड और उसी पर्व के कैरात पर्व से ली गई है। यद्यपि महाभारत की कथा का वर्णन ही यह महाकाव्य करता है । परन्तु कवि नें अपनी काव्य प्रतिभा से बहुत कुछ परिवर्तन एक बहुत सी सामग्रीयों को जोड़ने का सफल प्रयास किया है और मूल कथा से कहीं भी अलग न हटते हुए अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन किया है। इस इकाई में कवि नें वनेचर के द्वारा अपनें कार्य सम्पादन में लगे हुए गुप्तचर के गुण दोषों तथा कार्य में लगाये गये वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त कर राजा को अक्षरश: बतानें का वर्णन किया गया है ।

इस इकाई के माध्यम से प्रथम सर्ग के अन्तर्गत वनेचर के आगमन का एक कुशल राजा द्वारा अपने गुप्तचर की वार्ता को सुनने के लिए प्रेरित करना तदुपरान्त वनेचर द्वारा दुर्योधन के राज्य कौशल सम्बन्धी विभिन्न स्वरुपों का निर्धारण किया गया है । भारवि ने एक राज्य में अपने राजस्व को स्थापित करने के लिये दुर्योधन द्वारा किये गये समस्त उपायों को बड़ी ही गम्भीरता और सावधानी के साथ वनेचर के द्वारा प्रस्तुत कराया है जिसके मूल स्वरुप का आप अपने ज्ञान चक्षु के द्वारा अपनी प्रतिभा को और ऊपर ले जा सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

- भारवि द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् के वर्ण्य विषय से अवगत हो सकेंगे।
- इस इकाई के माध्यम एक कुशल गुप्तचर के कर्तव्यों को समझा सकेंगे।
- इस इकाई के माध्यम से एक कुशल शासक के व्यवहार से परिचित हो सकेंगे।
- इस इकाई की सहायता से वनेचर द्वारा कथित बातों की व्याख्या कर सकेंगे।

2.3 किरातार्जुनीयम् - श्लोक संख्या 1 से 15 तक

2.3.1 काव्य एवं वनेचर के कथन का उपक्रम

भारवि ने अपने ग्रन्थ का शुभारम्भ वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण के साथ श्री शब्द से किया है । श्री शब्द मंगल का सूचक है । जो कि काव्य को सुखान्त तक पहुँचाने के लिए किया जाता है । तथा वनेचर द्वारा आगमन में कथा का मूल उपक्रम है । जिसका वर्णन आगे किया जा रहा है ।

श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं
प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम् ।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः ।। 1 ।।

अन्वय- कुरूणाम् अधिपस्य श्रियः पालनीं प्रजासु वृत्तिं वेदितुं यं (वनेचरं युधिष्ठिरः) अयुङ्क्त। वर्णिलिङ्गी सः वनेचरः विदितः द्वैतवने युधिष्ठिरं समाययौ।

हिन्दी अनुवाद - कुरुदेश के राजा (दुर्योधन) के, राज्यलक्ष्मी का पालन करने वाले, प्रजाविषयक व्यवहार को जानने के लिए (युधिष्ठिर ने) जिसे नियुक्त किया था, ब्रह्मचारीवेशधारी वह वनेचर समस्त वृत्तान्त जानकर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास आया।

व्याख्या - दुर्योधन से द्यूत में पराजित होकर युधिष्ठिर द्वैतवन में वनवास का समय व्यतीत कर रहे थे। उन्होंने एक किरात (वनेचर) को यह पता लगाने का कार्य सौंपा है कि प्रजा के साथ दुर्योधन कैसा व्यवहार कर रहा हैं ? और उसके प्रति प्रजा की क्या धारणा है ? किरात ब्रह्मचारी के वेश में गुप्त रुप में सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर वापस आता है और युधिष्ठिर से निवेदन करने के लिए उनके पास जाता है।

टिप्पणी - इस श्लोक के चतुर्थ चरण में 'वने वनेचरः' में छेकानुप्रास अलङ्कार है। वंशस्थ छन्द है। वंशस्थ का लक्षण है- 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ' अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रम से जगण, तगण, जगण और रगण हों उसे वंशस्थ कहते हैं।

शब्द-रचना - कुरूणाम्- यहाँ ''कुरु'' शब्द कुरुदेश का वाचक है। वेदितुम्- विद् + तुमुन्। अयुङ्क्त- युज् धातु, लङ्कार, प्रथम पुरुष, एक वचन। वर्णिलिङ्गी- वर्णी का अर्थ है- ब्रह्मचारी। लिङ्ग का अर्थ है चिह्न। लिङ्गी का अर्थ है चिह्नवाला। वर्णिनः लिङ्गं वर्णिलिङ्गम्, षष्ठी तत्पुरुष। विदितः- विद् धातु, कर्ता अर्थ में क्त प्रत्यय, इसका अर्थ है- विदितवान्, जानकर। वनेचरः- वने चरति इति वनेचरः- वने+चर् +ट। तत्पुरुष समास। युधिष्ठिरं- युधि स्थिरः युधिष्ठिरः तम्। तत्पुरुष समास।

टिप्पणी- महाकाव्य के लक्षण के अनुसार प्रथम सर्ग की कथा एक ही छन्द वंशस्थ में निबद्ध है। सर्ग के अन्त में 45वें और 46वें श्लोक में छन्द बदल दिए गए हैं। अतः 44वें श्लोक तक वंशस्थ छन्द की समझना चाहिए।

2.3.2 वनेचर की उक्ति

दूत का गुण है- अमौढयममान्धममृषाभाषित्वमव्युहकत्वं चेति चार गुणाः। इन गुणों से युक्त वनेचर अपने स्वामी के समक्ष उपस्थित होकर शब्द सौष्ठव तथा अर्थ गाम्भीर्य से युक्त वचन बोलना प्रारम्भ करता है।

कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे
जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं
प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः।। 2 ।।

अन्वय- कृतप्रणामस्य सपत्नेन जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः तस्य मनः न विव्यथे। हि हितैषिणः मृषा प्रियं प्रवक्तुं न इच्छन्ति।

हिन्दी अनुवाद- प्रणाम करने के बाद, शत्रु द्वारा जीती गई पृथ्वी का वृत्तान्त राजा (युधिष्ठिर) से निवेदन करते समय उस (वनेचर) का मन व्यथित नहीं हुआ, क्योंकि हितैषी लोग असत्य प्रिय

बात नहीं कहना चाहते।

व्याख्या- वनेचर शिष्टाचारस्वरूप सर्वप्रथम युधिष्ठिर को प्रणाम करता है। तत्पश्चात् राज्य के विषय में ज्ञात वृत्तान्त से उन्हें अवगत कराता है। यह राज्य ऐसा है, जो शत्रु द्वारा जीत लिया गया है। सर्वप्रथम दुर्योधन ने द्यूतक्रीडारूप कपट से राज्य प्राप्त किया और अब अपने व्यवहार से, नीति से प्रजा का सम्मान प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है और सफल भी हो रहा है। इस प्रकार राज्य पर उसका वास्तविक अधिकार स्थापित हो रहा है। यद्यपि यह वृत्तान्त सत्य है, किन्तु युधिष्ठिर के लिए कटु भी हो सकता है। तो क्या वनेचर प्रिय लगने के लिए असत्य भाषण करे ? कवि का कथन है कि वह सत्य ही कहता है, भले ही वह कटु हो। इस कटु सत्य को कहने में उसे कोई पीड़ा नहीं होती, क्योंकि वह राजा युधिष्ठिर का कल्याण चाहता है। दवा कड़वी होती है, किन्तु स्वास्थ्यप्रद होती है। वास्तविक स्थिति का ज्ञान होने पर युधिष्ठिर उसके अनुरूप योजना बनायेंगे और सफल होंगे। केवल प्रिय लगने के लिए असत्य भाषण करने वाला शुभेच्छु नहीं हो सकता। वनेचर का कटु सत्य कथन-एक विशेष बात है और इसका समर्थन एक सामान्य तथ्य द्वारा किया गया है कि हितैषी जन असत्य प्रिय भाषण नहीं करते। अतः सामान्य से विशेष का समर्थन होने से यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। 'न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः' यह वाक्य सूक्ति है। सुन्दर कथन को सूक्ति या सुभाषित कहते हैं। सूक्तियाँ व्यापक लौकिक सत्य का उद्घाटन करती हैं।

शब्द रचना - कृतप्रणामस्य - कृतः प्रणामः येन सः कृतप्रणामः, तस्य कृतप्रणामस्य। बहुब्रीहि समास। महीभुजे - महीं भुनक्ति इति महीभुक्, तस्मै। मही + भुज् + क्विप्। निवेदयिष्यतः - नि + विद् + णिच् + लृट् + शतृ। निवेदयिष्यत् का षष्ठी विभक्ति, एक वचन का यह रूप 'तस्य का विशेषण है। विव्यथे - व्यथ् धातु का लिट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन में रूप। हितैषिणः - हितम् इच्छन्ति इति हितैषिणः। हित + इष् + णिनि।

द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो
रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।
स सौष्ठवौदार्यविशेष शालिनीं
विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ।। 3।।

अन्वय- सः द्विषां विघाताय विधातुम् इच्छतः भूभृतः अनुज्ञाम् अधिगम्य रहसि सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थाम् इति वाचम् आददे।

हिन्दी अनुवाद - वनेचर ने शत्रुओं के विनाश हेतु उद्योग करने की इच्छा वाले राजा (युधिष्ठिर) की अनुमति लेकर एकान्त में शब्दसौष्ठव और अर्थगाम्भीर्य से सुशोभित ऐसा (आगे कहा जाने वाला) वचन अपनाया (कहना आरम्भ किया)।

व्याख्या- युधिष्ठिर अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के इच्छुक हैं। राज्य-प्राप्ति के लिए शत्रुओं का विनाश आवश्यक है। अतः शत्रु-विनाश हेतु कुछ उपाय करने की बात युधिष्ठिर सोच रहे हैं। इस दृष्टि से गुप्तचर द्वारा एकत्र सूचना महत्वपूर्ण है। अतः उनकी अनुमति लेकर वनेचर एकान्त में सुन्दर शब्दों में गरिमा - मण्डित प्रामाणिक बात कहता है।

इस श्लोक में उल्लिखित 'इति' शब्द वनेचर के कथन का संकेत करता है। यह कथन आगे श्लोकों में वर्णित है। वनेचर के कथन की विशेषताओं के माध्यम से कवि ने भाषा-शैली के प्रति अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की है।

शब्द रचना - भूभृतः- भुवं विभर्ति इति भूभृत् , तस्य। भू + भृ +क्विप्। षष्ठी विभक्ति, एक वचन। सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम् - सुष्ठुःइति अस्य भाव: सौष्ठवम् (सुष्ठु + अञ्)। उदारस्य भावः औदार्यम् (उदार + ष्यञ्) सौष्ठवंच औदार्यञ्च सौष्ठवौदार्ये (इतरेतरद्वन्द्व समास), तयोः विशेषः सौष्ठवौदार्यविशेषः(षष्ठी तत्पुरुष समास) तेन शालते शोभते इति सौष्ठवौदार्य विशेष शालिनी, ताम्। विनिश्चितार्थाम् - विशेषेणः निश्चितः विनिश्चितः। प्रादि तत्पुरुष। विनिश्चितः अर्थः यस्याः सा, ताम्। बहुव्रीहि समास। आददे - आ + दा + लिट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन ।। 3 ।।

क्रियासु युक्तैनृप चारचक्षुषो
न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः ।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा
हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।। 4 ।।

अन्वय- हे नृप! क्रियासु युक्तैः अनुजीविभिः चारचक्षुषः प्रभवः न वंचनीयाः। अतः असाधु साधु वा क्षन्तुम् अर्हसि। हितं मनोहारि च वचः दुर्लभम्।

हिन्दी अनुवाद - हे राजन्! कार्यों में लगाये गये सेवकों को चाहिए कि वे गुप्तचररूपी नेत्रवाले स्वामी को धोखा न दें। इसलिए प्रिय अथवा अप्रिय (जो कुछ मैं कहूँ, उसे) आप क्षमा करें। क्योंकि हितकर और मधुर (प्रिय लगने वाले) वचन दुर्लभ होते हैं।

व्याख्या- दुर्योधन के उत्कर्षरूप कटु सत्य का निवेदन करने से पूर्व वनेचर युधिष्ठिर से क्षमा याचना करता है। युधिष्ठिर को सम्बोधित करते हुए वह कहता है -

हे राजन्! राजा द्वारा विशेष कार्यों में लगाये गये सेवकों को चाहिए कि वे स्वामी को यथार्थ से अवगत करा दें। स्वामी को तात्कालिक तनाव से दूर रखने के लिए, चाटुकारिता की दृष्टि से या अन्य किसी कारण से स्वामी के सामने यथार्थ को, सत्यभूत अर्थ को छिपाने का अर्थ है- स्वामी को धोखा देना। क्योंकि राजा के नेत्र गुप्तचर ही होते हैं। गुप्तचरों के माध्यम से ही उसे राज्य के स्थिति, प्रजा की प्रतिक्रिया आदि का ज्ञान होता है। इसलिए अपने कर्तव्य के अनुरूप आपसे यथार्थ-निवेदन करूँगा। मेरी बात आपको प्रिय लगे या अप्रिय, मुझे क्षमा करें। संसार में कल्याणकारी और प्रिय वचन दुर्लभ होते हैं।

श्लोक के पूर्वार्द्ध में गुप्तचर के कर्तव्य का निर्देश किया गया है। चतुर्थ चरण 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' सूक्ति है। साभिप्राय विशेषण के प्रयोग के कारण यहाँ परिकर अलङ्कार है। तृतीय चरण के विशेष अर्थ का चतुर्थ चरण के सामान्य अर्थ से समर्थन के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

शब्द रचना - चरन्ति इति चाराः। चर् धातु से कर्ता अर्थ में अच् प्रत्यय करने पर 'चर' बनता है। 'चर' से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होकर 'चार' बनता है। 'चार' शब्द का बहुवचन है 'चाराः'।

चाराःएवं चक्षूषि येषां ते चारचक्षुषः। बहुब्रीहि समास। यह पद 'प्रभवः' का विशेषण है । अनुजीविभिः - अनुजीवितं शीलम् एषाम् इति अनुजीविनः, तैः। अनु + जीव + णिनि । अनुक्त कर्ता में तृतीया । मनोहारि - मनो हर्तुं शीलमस्य इति । उपपद तत्पुरुष। मनस् + हृ + णिनि ।

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं
हितान्न यः संश्रुणुते स किंप्रभुः।
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ।। 5 ।।

अन्वय- यः अधिपं साधु न शास्ति सः किंसखा। यः हितात् न संश्रृणुते सः किंप्रभुः। हि नृपेषु अमात्येषु च अनुकूलेषु सर्वसम्पदः सदा रतिं कुर्वते।

हिन्दी अनुवाद- जो (परामर्श देने वाला) स्वामी को उचित परामर्श नहीं देता वह कुमित्र (बुरा मित्र) है, जो (स्वामी) हितैषी से (हितवचन) नहीं सुनता वह निन्दनीय स्वामी है । क्योंकि राजाओं और मन्त्रियों के एक मत रहने पर ही सभी समृद्धियाँ अनुराग करती हैं।

व्याख्या- पूर्व श्लोक में अपने कर्तव्य का निर्देश करने के बाद वनेचर इस श्लोक में यह कहना चाहता है कि आपको (युधिष्ठिर को) मेरी बात ध्यान से सुननी चाहिए। वह कहता है कि जो व्यक्ति अपने स्वामी को उचित परामर्श नहीं देता, वह सच्चा हितैषी नहीं है, और जो राजा या स्वामी अपने हितैषी की बात को ध्यान से नहीं सुनता, बात पर ध्यान नहीं देता वह राजा या स्वामी निन्दित स्वामी है। क्योंकि दोनों के परस्पर अनुरागयुक्त रहने से ही समृद्धि होती है। ऐसा न होने पर विनाश हो जाता है। अतः आपको मेरी बात ध्यान से सुननी चाहिए।

परामर्श-दाता मन्त्री तथा राजा की परस्पर विश्वसनीयता ही समृद्धि का कारण है- इस राजनीतिक तथा लोकोपयोगी तथ्यों का निरूपण इस श्लोक में किया गया है । पूर्वार्द्ध के अर्थसामर्थ्य से सिद्ध तथा निर्दिष्ट राजा और मन्त्री की विश्वसनीयता - रूप कारण का सर्वसम्पत्ति सिद्धि-रूप कार्य द्वारा समर्थन के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । श्लोक का पूर्वाध सूक्ति है।

शब्दरचना- किंसखा - कुत्सितः सखा किंसखा । कर्मधारय समास । किंप्रभुः - कुत्सितः प्रभुः किंप्रभुः। कर्मधारय समास। सर्वसम्पदः - सर्वाः सम्पदः सर्वसम्पदः। कर्मधारय । शास्ति - शास् धातु, लट्लकार प्रथम पुरुष एकवचन । द्विकर्मकधातु । संशृणुते - सम् + श्रु + लट्लकार प्रथम पुरुष एकवचन । 'सम्' उपसर्ग लगने से अकर्मक धातु । कुर्वते - कृ धातु का लट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन आत्मनेपद का रूप ।

2.3.3 दुर्योधन के नीति का वर्णन

सिंहासन पर आसीन होकर भी दुर्योधन पराजय की शंका करता हुआ उत्तम प्रजानीति द्वारा पृथ्वी के राज्य को अपने वश में करने के लिये किस प्रकार प्रयत्न कर रहा है इसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवाः
क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः।

तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया
निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम् ।। 6 ।।

अन्वय - निसर्गदुर्बोधं भूपतीनां चरितं क्व । (अन्यत्र) अबोधविक्लवाः (मादृशाः) जन्तवः क्व। (तथापि) मया विद्विषाम् निगूढतत्त्वं नयवर्त्म यत् अवेदि अयम् तव अनुभावः।

हिन्दी अनुवाद - स्वभाव से ही दुर्बोध राजाओं का चरित्र कहाँ ? और अज्ञान से अभिभूत मेरे जैसा क्षुद्र प्राणी कहाँ ? फिर भी मैं शत्रुओं के गूढ रहस्यवाले नीतिमार्ग को जो जान सका हूँ, वह आप का ही प्रभाव है ।

व्याख्या - वनेचर अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हुए राजाओं के व्यवहार की रहस्यात्मकता और राजनीति की सूक्ष्मता पर प्रकाश डालता है । राजाओं का व्यवहार रहस्यात्मक होता है । उसे समझ पाना सामान्य जन के वश की बात नहीं है । किस दृष्टि से कौन सा कार्य हो रहा है, इसका परिणाम क्या होगा, यह समझना कठिन होता है । सफल राजा अपनी चेष्टाओं से कार्यों का, उद्देश्यों का पता नहीं लगने देता। राजकार्य की सफलता गोपनीयता पर निर्भर रहती है। वनेचर कहता है कि मेरे पास इतनी बुद्धि कहाँ है कि राजनीति की गम्भीरता को समझ सकूँ। तथापि मैंने जो समझा है, वह आप की कृपा से ही सम्भव हो सका है । राजाओं के रहस्यात्मक चरित्र और सामान्य व्यक्ति की अज्ञानता में परस्पर विषमता का निरूपण किया गया है, अतः विषम अलंकार है ।

शब्दरचना- निसर्गदुर्बोधम् - निसृज्यते इति निसर्गः, दुःखेन कुमते इति दुर्बोधम्, निसर्गेण दुर्बोधम् निगर्सदुर्बोधम् । तृतीया तत्पुरुष समास। 'चरितम्' का विशेषण है । भूपतीनाम् - भुवः पतिः भूपतिः, तेषाम् । षष्ठी तत्पुरुष समास। अबोधविक्लवाः - न बोधः अबोधः। नञ् तत्पुरुष । अबोधेन विक्लवाः अबोधविक्लवाः। तृतीया तत्पुरुष । निगूढतत्त्वम् - नितराम् गूढं तत्त्वं यस्य तत् निगूढतत्त्वम् । बहुव्रीहि । नयस्य वर्त्म नयवर्त्म । षष्ठी तत्पुरुष । अवेदि - विद् धातु लुङ् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन, कर्मवाच्य ।

विशंकमानो भवतः पराभवं
नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः ।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते
नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ।। 7 ।।

अन्वय- नृपासनस्थः अपि सुयोधनः वनाधिवासिनः भवतः पराभवं विशङ्कमानः दुरोदरच्छद्मजितां नयेन जेतुं समीहते ।

हिन्दी अनुवाद- सिंहासन पर आरूढ रहता हुआ भी दुर्योधन, वनवासी आप (युधिष्ठिर) से पराजय की आशंका करता हुआ, द्यूत के व्याज से जीती गई पृथ्वी को नीति से वश में करने की चेष्टा कर रहा है ।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन राजगद्दी पर बैठा हुआ है, साधनसम्पन्न है, फिर भी जंगल में रहने वाले साधनविहीन आप से पराजय की शंका करता रहता है । इसीलिए प्रजा का मन जीतने के लिए, प्रजा को अपने पक्ष में करने के लिए, नीति का आश्रय ले रहा है । उसने द्यूत

के माध्यम से राज्य प्राप्त किया है, वास्तव में उसके पास कोई जनाधार नहीं है। उसके प्रशासन का मूल प्रजा में नहीं है। अपनी इस दुर्बलता को वह जानता है। इसीलिए लोकप्रियता अर्जित करने का प्रयास कर रहा है।

यहाँ ' पृथ्वी को नीति से वश में करने ' के कारण स्वरूप 'दुरोदरच्छद्मजिताम् ' का कथन हुआ है। अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है।

शब्दरचना- नृपासनस्थः - नृपस्य आसनम् नृपासनम्। षष्ठी तत्पुरुष। नृपासने तिष्ठति इति नृपासनस्थः। उपपद तत्पुरुष। नृपासन + स्था + क। वनाधिवासिनः - वनम् अधिवसति। इति वनाधिवासी, तस्मात्। उपपद तत्पुरुष। वन + अधि + वस् + णिनि। सुयोधनः - सुखेन युध्यते इति सुयोधनः। सु + युध्+युच्। उपपद तत्पुरुष। विशङ्कमानः - वि + शङ्क + शानच्। समीहते - सम् + ईह्। लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया
तनोति शुभ्रं गुण सम्पदा यशः।
समुन्नयन्भूतिमनार्यसङ्गमाद्
वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।। 8।।

अन्वय- तथापि जिह्मः सः भवज्जिगीषया गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तनोति। भूतिं समुन्नयन् महात्मभिः समं विरोधः अपि अनार्यसङ्गमात् वरम्।

हिन्दी अनुवाद- इस रूप में भी (सशङ्कित और नीतिपरायण रहता हुआ भी) कुटिल वह (दुर्योधन) आपको जीतने की इच्छा से गुणसमृद्धि द्वारा निर्मल यश फैला रहा है। ऐश्वर्यवृद्धिकारक महात्माओं के साथ विरोध भी दुर्जनों के साथ की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन आप से (युधिष्ठिर से) भयभीत रहता है। अतः लोकप्रिय बनने के लिए नीति का आश्रय ले रहा है। यद्यपि वह स्वाभाविक रूप से कुटिल हैं, किन्तु आप से प्रतिस्पर्धा रखने के कारण आपकी अपेक्षा स्वयं को उत्कृष्ट बनाने की इच्छा से गुणों द्वारा कीर्ति अर्जित कर रहा है। दुर्जनों की मित्रता की अपेक्षा महात्माओं के साथ शत्रुता भी श्रेयस्कर है। महापुरुष से विरोध होने पर उन्हें नीचा दिखाने के लिए गुणों का आश्रय लेना पड़ेगा। अतः व्यक्ति का उत्कर्ष ही होगा।

यहाँ 'ऐश्वर्य में वृद्धि करना' महात्माओं के साथ विरोध की श्रेष्ठता का कारण है। अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है और महात्माओं के साथ विरोध की श्रेष्ठता द्वारा 'दुर्याधन द्वारा कीर्ति-अर्जन' का समर्थन किया गया। अतः काव्यलिंग से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

श्लोक का चतुर्थ चरण सूक्ति है।

शब्दरचना- भवज्जिगीषया - जेतुमिच्छा जिगीषा, भवतः जिगीषा भवज्जिगीषा। षष्ठी तत्पुरुष। तया, हेतु अर्थ में तृतीया। अनार्यसङ्गमात् - न आर्याः अनार्याः। नञ् तत्पुरुष। अनार्याणां सङ्गमः अनार्यसङ्गमः, तस्मात् षष्ठी तत्पुरुष। महात्मभिः - महान् आत्मा येषां ते महात्मानः तैः। बहुव्रीहि। समुन्नयन् - सम् + उत् + नी + शतृ। तनोति - तन् धातु, लट्लकार प्रथम पुरुष, एकवचन।

कृतारिषड्वर्गजयेन मानवी-

मगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना।

विभज्य नक्तन्दिवमस्ततन्द्रिणा

वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ।। 9।।

अन्वय- कृतारिषड्वर्गजयेन अगम्यरूपां मानवीं पदवीं प्रपित्सुना अस्ततन्द्रिणा तेन नक्तन्दिवं विभज्य, नयेन पौरुषं वितन्यते।

अनुवाद- षड्विध शत्रुसमुदाय पर विजय प्राप्त कर, मनु द्वारा निर्दिष्ट दुर्गम मार्ग को प्राप्त करने की इच्छा से, आलस्य का त्याग कर वह (दुर्योधन) रात-दिन का विभाजन करके पुरुषार्थ का नीतिपूर्वक विस्तार कर रहा है।

व्याख्या- दुर्योधन मनुष्य के छः शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य पर विजय प्राप्त कर चुका है। मनु द्वारा प्रतिपादित प्रजापालन की दुर्गम नीति का अनुसरण करना चाहता है। वह आलस्य त्याग कर उचित समय पर कर्तव्य का अनुसरण करता हुआ पुरुषार्थ-सिद्धि में लगा हुआ है। अतः उसको पराजित करना सरल नहीं है।

श्लोक के द्वितीय चरण में 'प' तथा चतुर्थ में 'त' और 'न' की असकृत् अर्थात् बार - बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास है।

शब्दरचना- कृतारिषड्वर्गजयेन - षण्णां वर्गः षड्वर्गः। षष्ठी तत्पुरुष । अरीणां षड्वर्गः अरिषड्वर्गः। षष्ठी तत्पुरुष। कृतः अरिषड्वर्गस्य जयः येन सः कृतारिषड्वर्गजयः तेन। बहुव्रीहि। अगम्यरूपां - न गम्यं रूपं यस्याः सा अगम्यरूपां, ताम्। बहुव्रीहि। नक्तन्दिवं - नक्तं च दिवा च नक्तन्दिवम्। द्वन्द्व समास। अस्ततन्द्रिणा - अस्ता तन्द्रिः यस्य सः तेन। बहुव्रीहि। पौरुषम् - पुरुषस्य कर्म पौरुषम्। पुरुष + अण्। विभज्य - वि + भज् + क्त्वा (ल्यप्)।

टिप्पणी- मनुस्मृति में वर्णाश्रम - धर्म का सविस्तर प्रतिपादन है। ग्रन्थ का एक बड़ा अंश राजा के कर्तव्य, दण्डविधान आदि से परिपूर्ण है। इस मार्ग का अक्षरशः पालन दुष्कर कार्य है।

बोध प्रश्न 1 -

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

क. श्रियः शब्द का क्या अर्थ है -

क. सरस्वती ख. लक्ष्मी ग. दुर्गा घ . वाग्देवी

ख. युधिष्ठिर के समक्ष गुप्त बातें बताता है

क. दुर्योधन ख. नारद ग. अर्जुन घ . वनेचर

रिक्त स्थान भरिए -

ग. युधिष्ठिर के दूत का नाम .... है।

घ. हितकारी और .... वचन दुर्लभ है।

सही और गलत के निशान लगाएं -

ङ. दुर्योधन का मित्र वनेचर है। ( )

च. राजाओं और मन्त्रियों के अनुकूल रहने पर सभी सम्पत्तियॉं अनुराग करती हैं। ( )

2.3.4 सेवकादि के प्रति व्यवहार

दुर्योधन द्वारा अपने सेवकों आदि के सम्मानपूर्ण व्यवहार केवल दिखावटी नहीं अपितु ह्रदय से भली भाँति करता है। जिसके द्वारा वह अपने सेवकों के लिए प्रिय बन सके।

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः
समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः
कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ।। 10 ।।

अन्वय- गतस्मयः सः अनुजीविनः प्रीतियुजः सखीन् इव , सुहृदः बन्धुभिः समानमानान् , इव च, बन्धुतां कृताधिपत्याम् इव सन्ततं साधु दर्शयते।

हिन्दी अनुवाद- अहङ्कार रहित वह (दुर्योधन) बड़ी निपुणता से सेवकों को प्रिय मित्र जैसा, मित्रों को पारिवारिक व्यक्ति जैसा और पारिवारिक व्यक्तियों को राजा बनने जैसा बोध कराता है।

व्याख्या- दुर्योधन विनम्रभाव से कुशलतापूर्वक ऐसा व्यवहार करता है कि सेवक प्रिय मित्र लगते हैं अर्थात् सेवकों के साथ प्रियमित्र जैसा व्यवहार करता है। मित्रों के साथ पारिवारिक व्यक्ति जैसा व्यवहार करता है और पारिवारिक व्यक्तियों के साथ ऐसा व्यवहार करता है मानों वे स्वयं अधिपति हों। यहाँ छेकानुप्रास, उपमा तथा चतुर्थ चरण में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

शब्दरचना- गतस्मयः - गतः स्मयः यस्य सः। बहुव्रीहि समास। समानमानान् - समानं मानं येषां ते समानमानाः तान्। बहुव्रीहि। सुहृदः - शोभनं हृदयं येषां ते सुहृदः, तान्। बहुव्रीहि। बन्धुतां - बन्धूनां समूहो बन्धुता, ताम् । बन्धु + तल् + टाप् । कृताधिपत्यामिव - अधिपाति इति अधिपतिः। प्रादि तत्पुरुष । अधिपतेः भावः आधिपत्यम् । कृतम् आधिपत्यम् यस्याः सा कृताधिपत्या, ताम्। बहुव्रीहि।

2.3.5 त्रिवर्ग का वर्णन

दुर्योधन का सुखोपभोग धर्म के विपरीत नहीं है। और न ही अर्थ तथा काम। इन तीनों के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए वह त्रिवर्ण को बड़ी कुशलता के साथ अपनाता हुआ राज का भोग कर रहा है।

असक्तमाराधयतो यथायथं
विभज्य भक्त्या समपक्षपातया।
गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान्
न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम् ।। 11।।

अन्वय - यथायथं विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तम् आराधयतः अस्य त्रिगणः गुणानुरागात् सख्यम् ईयिवान् इव परस्परं न बाधते।

अनुवाद - उचित विभाजन करके समान दृष्टि से श्रद्धापूर्वक निर्लेप भाव से सेवन करते हुए इस (दुर्योधन) के धर्म, अर्थ तथा काम गुणानुराग के कारण मानो मित्रता को प्राप्त हो गये हैं और परस्पर बाधा नहीं पहुँचाते।

व्याख्या- मानव -जीवन के लक्ष्य को चार भागों में विभक्त किया गया है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष , इन्हें पुरुषार्थ कहते हैं । इनमें से प्रथम तीन पुरुषार्थ लौकिक जीवन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है। जीवन में ऐसी अनेक परिस्थितियाँ आती हैं, जब यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि इसे किस रूप में देखा जाय ? धर्म के रूप में, अर्थ के रूप में या काम के रूप में ? इन तीनों को विभाजित करने वाली रेखा का निर्धारण कठिन कार्य है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य इनमें से किसी एक को अधिक महत्त्व देता है और दूसरे की उपेक्षा कर देता है। एक के प्रति उसकी अधिक आसक्ति हो जाती है । फलस्वरूप उसका जीवन असन्तुलित हो जाता है तो वह असफल हो जाता है। जीवन को सन्तुलित बनाए रखने के लिए, सफलता के लिए, जीवन के सभी पक्षों को उचित महत्त्व देना पड़ता है। दुर्योधन के जीवन में सन्तुलन है । वह धर्म, अर्थ, काम की सीमा का निर्धारण करके तीनों को समान महत्त्व देता है । अतः उसके जीवन में इन तीनों में परस्पर संघर्ष की स्थिति नहीं, अपितु समन्वय है । इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि लगता है कि दुर्योधन के गुणों से अनुराग होने के कारण इन्होंने परस्पर मित्रता स्थापित कर ली है। क्योंकि बिना मित्रता के एक आश्रय में रहना कठिन है।

शब्दरचना- असक्तम् - न सक्तम् असक्तम्। नञ् तत्पुरुष। असक्तं यथा स्यात्तथा। क्रियाविशेषण । नञ् + सन्ज् + क्त। समपक्षपातया - पक्षे पातः पक्षपातः। सुप्सुपा। समः पक्षपातः यस्यां सा समपक्षपाता, तया। बहुव्रीहि। गुणानुरागात् - गुणेषु अनुरागः गुणानुरागः, तस्मात्। सप्तमी तत्पुरुष । त्रिगणः - त्रयाणां गणः त्रिगणः। षष्ठी तत्पुरुष। आराधयतः - आ + राध् + णिच् + शतृ। षष्ठी विभक्ति एक वचन। ईयिवान् - इ + लिट् + क्वसु, प्रथमा एकवचन।

2.3.6 उपाय चतुष्टय का वर्णनः

साम, दान, दण्ड, भेद इन्हें उपाय चतुष्टय कहा गया है । अतः दुर्योधन भी इन उपायों को अपने राज्य विस्तार के लिये यथास्थानवत भाव के द्वारा प्रयोग करता रहता है।

निरत्ययं साम न दानवर्जितं
न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम्।
प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी
गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया ।। 12।।

अन्वय- तस्य निरत्ययं साम दानवर्जितं न प्रवर्तते । (तस्य) भूरि दानं सत्क्रियां विरहय्य न (प्रवर्तते)। (तस्य) विशेषशालिनी सत्क्रिया गुणानुरोधेन विना न (प्रवर्तते)।

हिन्दी अनुवाद- उस दुर्योधन की बाधा रहित सामनीति का प्रयोग धनदान के बिना नहीं होता, प्रभूत धनदान सत्कार - रहित नहीं होता और विशिष्ट सत्कार गुणानुबन्ध के बिना नहीं होता।

व्याख्या- प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन की साम और दण्ड नीति का निरूपण करते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन सामनीति का प्रयोग करता है, किन्तु उसके साथ धनदान भी करता है। केवल मधुर बात ही नहीं करता बल्कि उसके साथ धन देकर सामनीति को और पुष्ट कर देता है। दान भी यदि अनादरपूर्वक किया जाय तो, उस दान का कोई फल नहीं होता। अतः सम्मानपूर्वक

दान देता है। जिस किसी व्यक्ति का सम्मान करना भी अनुचित है। अतः वह गुणवानों का ही सत्कार करता है। इस प्रकार प्रशंसनीय बनने का पूर्ण प्रयास कर रहा है।

यहाँ पूर्व-पूर्व वाक्य के विशेषण के रूप में उत्तर - उत्तर वाक्य की स्थापना होने से एकावली अलङ्कार है।

शब्दरचना- निरत्ययं - निर्गतः अत्ययः यस्मादिति निरत्ययम् - निर् + अति + इ + अच्। बहुव्रीहि। दानवर्जितं - दानेन वर्जितं दानवर्जितम्। तृतीया तत्पुरुष। विशेषशालिनी - विशेषेण शालते इति विशेषशालिनी। उपपद समास। गुणानुरोधेन - गुणानाम् अनुरोधः, तेन। षष्ठी तत्पुरुष। अनु + रुध् + घञ्। प्रवर्तते - प्र + वृत् + लट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना
स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा
निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्॥ 13॥

अन्वय- वशी सः न वसूनि वान्छन्, न मन्युना (अपितु) निवृत्तकारणः स्वधर्मः इत्येव गुरूपदिष्टेन दण्डेन रिपौ वा सुतेऽपि धर्मविप्लवं निहन्ति।

हिन्दी अनुवाद- जितेन्द्रिय वह दुर्योधन न तो धन के लाभ से, और न ही क्रोध के कारण, अपितु बिना किसी कारण के,'मेरा धर्म है' ऐसा मानकर गुरूजनों द्वारा निर्दिष्ट (दण्ड-विधान के अनुरूप) दण्ड द्वारा शत्रु अथवा पुत्र द्वारा किये गए धर्मातिक्रमण को रोकता है।

व्याख्या- दुर्योधन पूर्वाग्रह-मुक्त होकर केवल कर्तव्य-भावना से दण्डविधान के अनुरूप अपराधी को दण्ड देता है। दण्ड देते समय वह उपने और पराये का भेद नहीं करता। व्यक्ति की दृष्टि से दण्ड देने पर न्याय नहीं हो सकता, जिससे प्रजा राजा से खिन्न हो सकती है। दुर्योधन न्याय करता है। अतः इस विषय में प्रजा की खिन्नता का भी प्रश्न नहीं उठता।

इस श्लोक में 'वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना' इस अंश में व और न की असकृत् अर्थात् बार - बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास तथा धर्मविप्लव के निवारण में हेतुभूत स्वधर्म का कथन होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

शब्दरचना- वशी - वशः अस्ति अस्य इति। वश + इनि। वसूनि - वसु शब्द का द्वितीया विभक्ति बहुवचन का रूप है। वसु का अर्थ है धन। मन्युना - मन्यु शब्द का तृतीया एकवचन का रूप है। मन्यु का अर्थ है 'क्रोध'। निवृत्तकारणः - निवृत्तं कारणं यस्मात् सः। बहुव्रीहि समास। निवृत्तं + नि + वृत् + क्त। कारणम् - कृ + णिच् + ल्युट्। धर्मविप्लवम् - धर्मस्य विप्लवः धर्मविप्लवः तम्। षष्ठी तत्पुरुष। स्वधर्मः - स्वस्य धर्मः स्वधर्मः। षष्ठी तत्पुरुष। गरुपदिष्टेन - गुरुभिः उपदिष्टः गुरूपदिष्टः तेन। तृतीया तत्पुरुष। निहन्ति - नि + हन् + लट्लकार, प्रथमपुरुष एकवचन।

विधाय रक्षान् परितः परेतरा-
नशङ्किताकारमुपैति शङ्कितः।
क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः

कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः ।। 14।।

अन्वय- शंकितः (सः) परितः परेतरान् रक्षान् विधाय अशङ्किताकारम् उपैति। क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृताः सम्पदः अस्य कुतज्ञतां वदन्ति।

हिन्दी अनुवाद- सशंकित होता हुआ वह (दुर्योधन) चारों ओर आत्मीयजनों को रक्षक नियुक्त करके निःशंक-सा हो जाता है। कार्य सम्पन्न हो जाने पर सेवकों को दी जाने वाली सम्पत्तियाँ इसकी कृतज्ञता प्रकट करती हैं।

व्याख्या- मनुष्य की विचारधारा विशेष परिस्थिति में बदल भी सकती है। कभी-कभी अपने भी पराये हो जाते हैं। इसीलिए शासक को किसी पर पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। किन्तु सब को सन्देह की दृष्टि से देखने पर विश्वसनीय भी अविश्वसनीय हो सकते हैं और धोखा दे सकते हैं। बुद्धिमानी यह है कि मन में सन्देह होते हुए भी उसे अपनी चेष्टा या व्यवहार द्वारा परिलक्षित न होने दें। दुर्योधन आत्मीयजनों को, विश्वसनीय लोगों को ही रक्षक नियुक्त करता है, किन्तु रक्षक नियुक्त करके भी उनकी गतिविधियों पर ध्यान रखता है। अपने व्यवहार से यह आभास नहीं होने देता कि वह शङ्का करता है। इसके अतिरिक्त यदि कोई सेवक निर्दिष्ट कार्य सम्पन्न कर देता है, तो उसे पारितोषिक देकर अपनी कृतज्ञता भी प्रदर्शित करता है।

इस श्लोक में र और त की बार - बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास अलंकार है।

शब्दरचना- परेतरान् - परेभ्यः इतरे परेतरे तान् परेतरान् । पन्चमी तत्पुरुष । रक्षान् - रक्षन्ति इति रक्षाः तान्। रक्ष् +अच्। विधाय - वि + धा + ल्यप्। अशङ्किताकारम् - शङ्का सन्जाता अस्य इति शङ्कितः। शङ्का + इतच् । न शङ्कितः अशंकितः। नञ् तत्पुरुष । अशंकितस्य आकारः अशंकिताकारः तम् । षष्ठी तत्पुरुष । आकारः - आ + कृ + घञ् । क्रियापवर्गेषु - क्रियाणाम् अपवर्गाः क्रियापवर्गाः, तेषु । षष्ठी तत्पुरुष । अपवर्गः - अप + वृज् + णिच् +घञ् । अनु + जीविसात्कृताः - अनुजीविनां सात्कृताः इति अनुजीविसात्कृताः। अनुजीविन् + साति + कृ + टाप्। कृतज्ञताम् - कृतं जानाति इति कृतज्ञः, तस्य भावः कृतज्ञता, ताम्। कृत + ज्ञा + क = कृतज्ञः, कृतज्ञ + तल् + टाप् । उपैति - उप + इ + लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन ।

अनारतं तेन पदेषु लम्भिता
विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रियाः।
फलन्त्युपायाः परिबृंहितायती-
रुपेत्य सङ्घर्षमिवार्थसम्पदः ।। 15।।

अन्वय- तेन पदेषु सम्यक् विभज्य विनियोगसत्क्रियाः लम्भिताः उपायाः सङ्घर्षम् उपेत्य इव परिवृंहितायतीः अर्थसम्पदः अनारतं फलन्ति ।

हिन्दी अनुवाद- उसके द्वारा (दुर्योधन द्वारा) उचित स्थानों पर भलीभाँति विभाजित करके विनियोगरूपी सत्कार को प्राप्त कराए गए (प्रयोग में लाए गए) साम, दान, दण्ड, भेद रूप उपाय (एक दूसरे से) मानो प्रतिस्पर्धा करते हुए उत्तरोत्तर वृद्धिकारिणी अर्थसम्पत्तियों को निरन्तर उत्पन्न करते रहते हैं।

व्याख्या- उपाय की सार्थकता क्रियान्वयन में है,अर्थात् लागू करने में है । इसके साथ ही यह भी

जानना आवश्यक है कि कब किस परिस्थिति में कौन सा उपाय लागू किया जाय ? दुर्योधन उपयुक्त अवसर पर उचित उपाय का प्रयोग करता है। राजनीति के चार उपाय हैं- साम, दान, दण्ड, भेद। इन उपायों का उचित विनियोग (प्रयोग) ही इनका सत्कार है। दुर्योधन द्वारा उचित विनियोग-रूप सम्मान से सम्मानित ये उपाय उसे अर्थसम्पत्ति प्रदान करने में (समृद्ध बनाने में) परस्पर एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहते हैं अर्थात् अधिकाधिक सिद्धि प्रदान करने में लगे हुए हैं। यहाँ उपायों में परस्पर स्पर्धा की सम्भावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

शब्दरचना- विनियोगसत्क्रियाः - विनियोग एव सत्क्रियाः येषां विनियोगसत्क्रियाः। विनियोग - वि + नि + युज्। परिबृंहितायतीः - परिबृंहिता आयतिः यासां ताः। बहुव्रीहि। परिबृहिता - परि + बृह + णिच् +क्त+टाप्। आयतिः - आ + यम् +क्तिन्। उपेत्य - उप + इ + क्त्वा (ल्यप्)। तुक् का आगम। अनारतम् - न आरतम् अनारतम्। नञ् तत्पुरुष।

बोध प्रश्नः2 -

बहुविकल्पीय प्रश्नः-

क. पुरूषार्थ चतुष्टय में नहीं आता

(क) धर्म (ख) दण्ड

(ग) अर्थ (घ) काम

ख . सेवक आदि के प्रति व्यवहार का वर्णन किस श्लोक में किया गया है

(क) 10 वें (ख) 11 वें

(ग) 12 वें (घ) 13 वें

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

(ग) दुर्योधन अपने सेवकों को........................... देता है।

(घ) अनारतं .... लम्भिता।

नीचे कुछ वाक्य दिये गये हैं जिनमें सही वाक्यों के समक्ष सही (√) तथा गलत वाक्यों के सामने गलत (x) का निशान लगायें-

(ङ) दुर्योधन की सामनीति दान के बिना पूरी नहीं होती ( )

(ख) दुर्योधन इन्द्रियों को वश में करके कार्य सम्पादन करता है ( )

2.4 सारांश

किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग का यह भाग भारवि द्वारा एक सेवकों के अपने स्वामी के प्रति उन सभी कर्तव्यों का बोध कराता है। जिनके कि एक सेवक के अन्दर समाहित होने चाहिए। सेवक का कार्य केवल सेवा ही नहीं अपितु वे सभी कार्य जिससे की वह अपने स्वामी की रक्षा कर सके। वह एक सच्चा हितैषी भी है। राजा का कर्तव्य है कि वह अपने हितैषी के सभी वचनों को ध्यान से, बिना किसी मध्यवार्ता के सुनते रहे और सेवक का कर्तव्य है कि वह सत्य बात ही राजा के समक्ष प्रस्तुत करें। इस इकाई के माध्यम से आप किरातार्जुनीयम् में वर्णित युधिष्ठिर तथा वनेचर के मध्य वार्ता को बड़े ही सरल तरीके से अध्ययन कर सकेंगे तथा सम्बन्धित प्रश्नों

के उत्तर सरलता पूर्वक दे सकेंगे।

2.5 शब्दावली

वशी – जितेन्द्रिय
हितैषिणः - हित चाहने वाले
अनुजीविभिः - सेवकों द्वारा
निसर्गदुर्बोधम् - स्वाभाविक रूप से जानने में कठिन
नयेन - नीति से
असक्तं - अनासक्त भाव से
क्रियापवर्गेषु - कार्य सम्पन्न होने पर

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क. (ख)
   ख. (घ)
   ग. वनेचर
   घ . मनोहारी
   ङ. गलत
   च .सही
2. क. (ख)
   ख. क 10 वें
   ग. प्रचुर धन
   घ . तेन पदेषु
   ङ. गलत
   च. सही

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारवि - किरातार्जुनीयम्
2. वामनशिवरामआप्टे - संस्कृत हिन्दी कोश

2.8 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

1. काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट
2. छन्दालंकारमन्जरी - डा0 वाकेलाल मिश्र

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वनेचर की उक्तियों की समीक्षा कीजिए।
2. दुर्योधन के राज्य से सम्बन्धित नीतियों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 3 . किरातार्जुनीयम् - श्लोक संख्या 16 से 30 तक

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

सुन्दर छाया की भाँति भारवि की प्रतिभा जिससे अधिक हो गई है ऐसे छत्र सदृश भारवि के वंशस्थ छन्द की विचित्रता अवर्णनीय और अलौकिक है। अर्थ गौरव के साथ-साथ पदों की विशदार्थता अपुनरूक्तार्थता पदों का परस्पर साकाडक्षत्व प्रभृति गुण भारवि उत्तम वाणि में मानते थे । भारवि के वर्णन की शक्ति के विषय में कोई सन्देह नहीं उनकी वर्णन शक्ति विविक्तवर्णाभरणा है, सुख श्रुति है , प्रसन्नगम्भीर पद है, तथा सबके चित्त को प्रसन्न करने वाली है उनकी शैली के उत्कृष्ट रूप में एक प्रसन्न औदार्य रहता है, जो कि निश्चित ही मनोहर है भारवि का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार है संस्कत भाषा पर उनके अधिकार की पराकाष्ठा हम चित्रबन्ध में पाते हैं।

चित्रबन्ध निबन्धन यदि एक काव्य की दृष्टि से उत्तम नहीं कहा जा सकता तो दूसरी ओर यह भारवि का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार व्यक्त करना है। भारवि अपने समय के प्रतिनिधि कवि है इनकी शैली उदात्त है तथा वीर रस के सर्वथा अनुरूप है भारवि राजनीति के विषम घटना-चक्र के वर्णन में पूर्ण रूप से सफल भी दिखते है वही उन्होंने अपने ग्रन्थ में सूक्तियों का एक विशाल स्वरूप भी खड़ा किया है। अपने विषय पर पकड़ और कवित्त्वचातुरी का बड़े सुन्दर तरीके से प्रस्तुत किया है।

इस इकाई के माध्यम से कवि के वृहद स्वरूप के साथ-साथ उनकी राजनीति विषयक स्वरूप से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। उनकी भाषा तथा शब्द सौष्ठव का एक सुन्दर चित्रण इस इकाई के माध्यम से आप विश्लेषित कर सकेगें ।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप -

- दुर्योधन के प्रजा तथा उनके सुखादि से आप अवगत हो सकेंगे।
- द्रौपदी दारा युधिष्ठिर के समक्ष स्त्रीरूप की स्थापना से परिचित हो सकेगे।
- भारवि की लेखन क्षमता से परिचित हो सकेगे।
- सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर कुशलता से दे सकेंगे।

3.3 वनेचर की उक्ति

युधिष्ठिर दारा गुप्तचर के रूप में दुर्योधन के राज्य से सम्बन्धित सुचनाओं को प्राप्त करने के उपरान्त वनेचर सभा में उपस्थित होकर एक-एक करके सभी एकत्रित स्वरूप को यथावत स्थापित करने का सफल प्रयास करता है दुर्योधन के नीति का वर्णन से वकादि के प्रति व्यवहार ही वर्ग तथा धनसम्पत्ति के वर्णनोपरान्त उसके योद्धागण , गुप्तचर , मित्रता तथा धर्म-सम्पत्ति का

है जिसका अध्ययन आप आगे करेंगे।

अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलं
तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम्।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां
भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः ।। 16 ।।

अन्वय- अयुग्मच्छदगन्धिः नृपोपायनदन्तिनां मदः अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलं तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरं भृशम् आर्द्रतां नयति।

हिन्दी अनुवाद- सप्तपर्ण पुष्प की गन्ध के समान गन्धवाला राजाओं द्वारा उपहार में दिए गए हाथियों का मदजल, अनेक राजाओं के रथों और अश्वों से भरे हुए उसके (दुर्योधन के) सभाभवन के प्राङ्गण को अत्यधिक गीला बना रहा है।

व्याख्या- वनेचर दुर्योधन के प्रभाव को व्यक्त करने के लिए कहता है कि दुर्योधन के सभा भवन में अनेक राजा उपस्थित रहते हैं। उनके वाहनों से सभा भवन का प्राङ्गण भरा रहता है। दरबार में आने वाले राजा साथ में उपहार भी लाते हैं। ऐसे ही उपहार में प्राप्त श्रेष्ठ हाथियों के मदजल से प्राङ्गण गीला बना रहता है।

वनेचर का भाव यह है कि दुर्योधन के बढ़ते प्रभाव के कारण विभिन्न देशों के राजा दुर्योधन से मैत्री-सम्बन्ध बनाने के लिए उत्सुक दिखाई पड़ते हैं और उसे प्रसन्न करने के लिए उपहार भी लाते हैं।

शब्दरचना- न युग्मः अयुग्मः। नञ् तत्पुरुष। अयुग्माः छदाः अस्य इति अयुग्मच्छदः। बहुव्रीहि। अयुग्मच्छदस्य विकारः पुष्पम् अयुगमच्छदम्। अयुग्मच्छद + अण्। अयुग्मच्छदस्य गन्धः अयुग्मच्छदगन्धः। षष्ठी तत्पुरुष। अयुग्मच्छदस्य गन्ध इव गन्धो यस्य सः अयुग्मच्छन्दगन्धिः। बहुव्रीहि। नृपोपायनदन्तिनाम् - नृपाणाम् उपायनानि नृपोपायनानि। षष्ठी तत्पुरुष। नृपोपायनानि दन्तिनः नृपोपायनदन्तिनः। कर्मधारय। तेषाम् नृपोपायनदन्तिनाम्। आस्थान - निकेतनाजिरम् - आस्थानस्य निकेतनम् आस्थाननिकेतनम्। षष्ठी तत्पुरुष। आस्थाननिकेतनस्य अजिरम् आस्थाननिकेतनाजिरम्। षष्ठी तत्पुरुष। अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलम् - न एके अनेके। नञ् तत्पुरुष। अनेके राजन्याः अनेकराजन्याः। कर्मधारय। रथाश्च अश्वाश्च रथाश्वम्। समाहार द्वन्द्व। अनेकराजन्यरथाश्वेन सङ्कुलम् इति अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलम्। तृतीया तत्पुरुष।

टिप्पणी- युग्म का अर्थ है जोड़ा। छद का अर्थ है पत्ता। जिस पेड़ के गुच्छे में जोड़ पत्ते नहीं होते, उसे अयुग्मच्छद कहेंगे। एक वृक्ष है, जिसमें एक गुच्छे में सात पत्ते होते हैं, इसीलिए इसे 'सप्तमपर्ण' कहते हैं। इसी का दूसरा नाम 'विषमच्छद' है। 'विषमच्छद' का ही पर्याय है- अयुग्मच्छद। श्रेष्ठ हाथियों के गण्डस्थल से चूने वाले मदजल की गन्ध सप्तपर्ण के फूल की गन्ध के समान होती है। आस्थान का अर्थ है- सभा।

3.3.1 धन- सम्पत्ति, कृषि और प्रजासुख का वर्णन

दुर्योधन अपने राज्य में उपहार के रूप में लाए गऐ हाथियों और अश्वों जहाँ आँगन को अर्थ सम्पतियों से पूर्ण वैभवशाली बना रहा है वही खेती की समृद्धि तथा किसानों के सुख का

उल्लेख कर अपने प्रजा पालन की दक्षता दर्शाता है । श्लोक संख्या 17 के वर्णन में इसको निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है -

सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलै-
रकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृका
श्चिराय तस्मिन् कुरवश्चकासति ।। 17 ।।

अन्वय- चिराय तस्मिन् क्षेमं वितन्वति (सति) अदेवमातृकाः कुरवः अकृष्टपच्या इव कृषीवलैः सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधतः चकासति।

हिन्दी अनुवाद - चिरकाल तक उसके (दुर्योधन के) द्वारा (प्रजा का) हित-सम्पादन होने पर वर्षा के जल पर आश्रित न रहने वाला कुरुदेश, कृषकों द्वारा मानो बिना जोताई के ही अनायास प्राप्त होने वाली फसलों को धारण करता हुआ सुशोभित हो रहा है।

व्याख्या -दुर्योधन के प्रशासन की विशेषता का प्रतिपादन करते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन प्रजा के कल्याण के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है । इसी का परिणाम है कि आज उसके राज्य में कृत्रिम् नदियों और नहरों का जाल बिछा हुआ है । अब प्रजा को वर्षा के जल पर आश्रित नहीं रहना पड़ता । सिंचाई की पर्याप्त सुविधा के कारण किसान कृषिकार्य में कठिनाई का अनुभव नहीं करते । ऐसा प्रतीत होता है कि ये बिना जोताई वगैरह किए ही बड़ी आसानी से फसल प्राप्त कर लेते हैं । किसानों द्वारा उगाई गई फसल से सम्पूर्ण कुरुदेश सस्यसमृद्ध हो गया है । किसी देश की प्रमुख समस्या खाद्य-समस्या होती है । खाद्य-समस्या का समाधान कृषकों द्वारा ही सम्भव है । खेती के लिए कृषकों को उचित साधन उपलब्ध कराना राजा का कर्तव्य है। खेती में सबसे बड़ी समस्या सिंचाई की होती है । दुर्योधन ने सिंचाई की समुचित व्यवस्था कर दी है। इसका परिणाम यह है कि किसान पर्याप्त फसल उगा रहे हैं और कुरुदेश धनधान्य-परिपूर्ण हो गया है । इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

टिप्पणी - जो देश वर्षा के जल से सिंचित होने वाली फसल पर आश्रित रहता है, उसे देवमातृक कहते हैं, और जो देश नदी के जल से सिंचित फसल पर आश्रित रहता है, उसे नदीमातृक कहते हैं। कवि ने यहाँ कुरुदेश के लिए 'अदेवमातृकाः' विशेषण का प्रयोग किया है अर्थात् वर्षा के जल पर आश्रित न रहने वाला । वर्षा के जल पर आश्रित न रहने का अर्थ है- कृत्रिम साधनों अर्थात् नदियों या नदियों से निकलने वाली नहरों के जल पर आश्रित रहना।

शब्दरचना- वितन्वति - वि + तन् + लट् शतृ, सप्तमी एकवचन । अदेवमातृकाः - देवः एव माता येषां ते देवमातृकाः। बहुव्रीहि । न देवमातृकाः अदेवमातृकाः। नञ् तत्पुरुष । कुरवः - कुरूणां निवासाः कुरवः। तस्य निवासः से अण् । कुरु + अण् । अण् का लोप । अकृष्ट पच्याः - कृष्टेन पच्यन्ते इति कृष्टपच्याः, न कृष्टपच्याः अकृष्ट पच्याः। नञ् तत्पुरुष । कृषीवलैः - कृषिः अस्ति येषां ते कृषीवलाः तैः। कृषिः - कृष् + इ। कृषि + वलच् । वलच् के कारण इ का दीर्घ । सस्यसम्पदः - सस्यानां सम्पदः सस्यसम्पदः। षष्ठी तत्पुरुष ।

उदारकीर्तेरुदयं दयावतः
प्रशान्तबाधं दिशतोऽभिरक्षया ।
स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता
वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी ।। 18 ।।

अन्वय- उदारकीर्तेः दयावतः अभिरक्षया प्रशान्तबाधम् उदयं दिशतः वसूपमानस्य अस्य गुणैः उपस्नुता मेदिनी वसूनि स्वयं प्रदुग्धे ।

हिन्दी अनुवाद- अतियशस्वी, दयालु, पूर्ण सुरक्षा के कारण निर्विघ्न रूप से प्रगति की वृद्धि करने वाले, कुबेर - सदृश इसके (दुर्योधन के) गुणों से द्रवित पृथ्वी अपने आप प्रभूत धन देती है।

व्याख्या- दुर्योधन अपने राज्य की पूर्ण सुरक्षा करता है । सुरक्षित राज्य की उन्नति में कोई व्यवधान नहीं हो पाता। किसी व्यक्ति को गाय का दूध प्राप्त करने के लिए बछड़े का सहारा लेना पड़ता है। बछड़े के प्रति प्रेम के कारण गाय द्रवित हो जाती है और उसके थन में दूध आ जाता है, किन्तु उसे दूध को निकालने के लिए व्यक्ति को प्रयास करना पड़ता है । दुर्योधन के गुणों से द्रवित पृथ्वी उस गाय के समान है, जो अपना दूध स्वयं दे देती है । इसके लिए अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता। पृथ्वी स्वयं प्रभूत धनसम्पत्ति प्रदान करती है अर्थात् राज्य बाहरी आक्रमण आदि से मुक्त होकर निरन्तर समृद्धि की ओर बढ़ रहा है ।

यहाँ पृथ्वी का वर्णन है, किन्तु वर्णन के आधार पर अप्रस्तुत 'गाय' की प्रतीति होने से समासोक्ति अलंकार है ।

शब्दरचना- उदारा कीर्तिः यस्य सः उदारकीर्तिः, तस्य । बहुव्रीहि । उद् + ऋ घञ् उदारः, कृत + क्तिन् कीर्तिः। दयावतः - दया अस्ति अस्य इति दयावान्, तस्य । दया + मतुप् (वतुप्)। प्रशान्तबाधम् - प्रशान्ता बाधा यथा स्यात्तथा । अव्ययीभाव समास, क्रियाविशेषण । वसूपमानस्य - वसुः उपमानम्, उप + मा + ल्यूट्। अभिरक्षा - अभितः रक्षा अभिरक्षा, तया । दिशतः - दिश् + लट् शतृ, षष्ठी एकवचन, अस्य का विशेषण । प्रदुग्धे - प्र + दुह् + लट् कर्मकर्ता अर्थ में । प्रथमपुरुष एकवचन ।

3.3.2 योद्धा गण एवं गुप्तचर का वर्णन

दुर्योधन के राज्य में उसके सैनिक अपने युद्ध कौशल से अन्य राजाओं के मन में भय उत्पन्न कर देते हैं तथा अपनी प्राणों की आहुति देने से नहीं डरते। वहीं दुर्योधन द्वारा लगाये गये गुप्तचर अपने राजा के प्रति इमानदारी से सारी बातें प्रस्तुत करते हैं ।

महौजसो मानधना धनार्चिता
धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्त्तयः।
नसंहतास्तस्य नभिन्नवृत्तयः
प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम् ।। 19।।

अन्वय- महौजसः मानधनाः धनार्चिताः, संयति लब्धकीर्त्तयः, नसंहताः नभिन्नवृत्तयः धनुर्भृतः असुभिः तस्य प्रियाणि समीहितुं वाञ्छन्ति ।

हिन्दी अनुवाद- महाबलशाली, स्वाभिमानी, धन से सम्मानित, युद्ध में ख्याति पाये हुए,

स्वार्थवश संगठित न होने वाले और परस्पर विपरीत आचरण न करने वाले धनुर्धारी (अपने) प्राणों से (भी) उसका (दुर्योधन का) कल्याण करना चाहते हैं।

व्याख्या- वनेचर दुर्योधन की लोकप्रियता का वर्णन करते हुए कहता है कि दुर्योधन का हित चाहने वाले वीर अपने प्राणों की भी बाजी लगाने के लिए तैयार है कवि ने वनेचर के इस कथन में वीरों के लिए कुछ ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया है। जो प्रकारान्तर से दुर्योधन की सफलता की सम्भावना व्यक्त करते हैं।

दुर्योधन की सहायता के लिए तत्पर योद्धा बलशाली हैं। उन्हें युद्ध में पराजित करना आसान नहीं है। स्वाभिमानी हैं, अतः अपने पथ से विचलित होने वाले नहीं है। उनकी युद्ध-कला युद्ध में प्रमाणित हो चुकी है, अतः उसमें सन्देह का कोई कारण नहीं है। धन से सत्कृत हैं। अतः धन के लोभ में पड़कर दुर्योधन को धोखा दें, ऐसी भी सम्भावना नहीं है। स्वार्थ के कारण योद्धाओं में न तो कोई संगठन है और न ही परस्पर कोई विरोध है। यदि कोई संगठन होता, जो स्वार्थपूर्ति के लिए बना हो, तो स्वार्थपूर्ति के अभाव में विद्रोह भी हो सकता है। यदि उन योद्धाओं के व्यवहार परस्पर विरोधी हों तो भी दुर्योधन की सफलता सन्दिग्ध हो जाती। योद्धाओं का एक ही लक्ष्य है- दुर्योधन का हित सम्पादन और इसके लिए वे अस्त्र उठाए हुए प्राणों की बाजी लगाने के लिए तत्पर हैं। अतः दुर्योधन को पराजित करना कठिन कार्य है।

इस श्लोक में विशेषणों का प्रयोग विशेष अभिप्राय से किया गया है, अतः परिकर अलङ्कार है।

शब्दरचना- महौजसः - महत् ओजः येषां ते। बहुव्रीहि। मानधनाः - मानः एव धनं येषां ते। बहुव्रीहि। धनार्चिताः - धनेन अर्चिताः। तृतीया तत्पुरुष। अर्चिताः - अर्च+णिच् + क्त। धनुर्भृतः - धनुः विभ्रति इति धनुर्भृतः ते। उपपद समास। धनुष् + भृ + क्विप्। लब्धकीर्त्तयः - लब्धा कीर्त्तिः यै, ते। बहुव्रीहि। नसंहताः - न संहताः नसंहताः। सुप्समा। संहताः - सम् + हन् + क्त। नभिन्नवृत्तयः - भिन्नाः वृत्तयः तेषां ते भिन्नवृत्तयः। बहुव्रीहि। न भिन्नवृत्तयः नभिन्नवृत्तयः। सुप्सुपा। भिन्नाः - भिद् + क्त+टाप्। वृत्तिः - वृत् + क्तिन्। समीहितुम् - सम् +ईह् + तुमुन्। वन्छन्ति - वान्छ + लट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रियाः
स वेद निःशेषमशेषितक्रियः।
महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः
प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः।। 20।।

अन्वय- अशेषितक्रियः सः सच्चरितैः चरैः महीभृतां क्रियाः निःशेषं वेद। धातुः इव तस्य ईहितं महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलैः प्रतीयते।

हिन्दी अनुवाद- (अपने) सभी कार्यों को सम्पन्न कर चुका वह (दुर्योधन) उत्तम चरित्रवाले गुप्तचरों के माध्यम से राजाओं की गतिविधियों का पता लगाता रहता है। ब्रह्मा की तरह उसकी (दुर्योधन की) चेष्टा उत्कृष्ट कल्याणप्रद परिणामों द्वारा (ही) ज्ञात होती है।

व्याख्या- एक कुशल राजा अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन नहीं रहता। सर्वप्रथम उसे

अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए। तत्पश्चात् अन्य राजाओं की गतिविधियों की जानकारी रखनी चाहिए। गुप्तचरों के माध्यम सी अन्य राजाओं की गतिविधि का ज्ञान हो सकता है। अतः गुप्तचर को सच्चरित्र होना चाहिए। शासन में गोपनीयता आवश्यक है। अपनी योजना को गुप्त रखना चाहिए। दुर्योधन अपने कर्तव्य के प्रति सजग है। वह अपना कर्तव्य पूरा करके सदाचारी गुप्तचरों द्वारा अन्य राजाओं के विषय में सूचना एकत्र करता रहता है, साथ ही अपनी चेष्टा को छिपाये रहता है। कार्यसिद्धि होने पर ही इसकी चेष्टा का ज्ञान हो पाता है।

शब्दरचना- अशेषितक्रियः - न शेषिताः अशेषिताः। नञ् तत्पुरुष। अशेषिताः - क्रियाः येन सः अशेषितक्रियः। बहुव्रीहि। शिष् + णिच् + क्त +टाप्। सच्चरितैः - सत् चरितं येषां ते सच्चरिताः तैः। बहुव्रीहि । चरैः - चरन्ति इति चराः, तैः। चर् + अच् । महीभृताम् - महीं विभ्रति इति महीभृतः तेषाम्। उपपद तत्पुरुष। मही + भृ + क्विप्। निःशेषम् - निर्गतः शेषः यस्मात् तत् यथा स्यात् तथा । वेद - विद् + लट् प्रथम पुरुष, एकवचन । महोदयैः - महान् उदयः येभ्यः तानि महोदयानि, तैः। बहुव्रीहि। हितानुबन्धिभिः - हितम् अनुबध्नन्ति इति हितानुबन्धीनि, तैः। उपपद तत्पुरुष। हित +अनु +बन्ध् + णिनि। प्रतीयते - प्रति + इ +लट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन।

3.3.3 मित्रता एवं धार्मिकता

दुर्योधन के प्रति अन्य अधीन राजाओं के प्रति शस्त्र उठाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। राजाओं के साथ हमेशा मित्रवत् व्यवहार ही रखता है और अपने कनिष्ठ भ्राता दुःशासन को युवराज नियुक्त कर पुरोहित के आज्ञानुसार धर्माचरण में लगा हुआ है।

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः
कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते
नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम्।। 21।।

अन्वय- तेन क्वचित् सज्यं धनुः न उद्यतम्। वा आननं कोपविह्मं न कृतम्। नराधिपैः अस्य शासनं गुणानुरागेण माल्यम् इव शिराभिः उह्यते।

हिन्दी अनुवाद- उसके द्वारा (दुर्योधन द्वारा) कभी न तो चढ़ी हुई प्रत्यन्चा वाला धनुष उठाया गया और न क्रोधवश मुँह टेढ़ा किया गया। राजाओं द्वारा इसका आदेश गुणों (दुर्योधन के दया, दाक्षिण्य आदि) के प्रति अनुराग के कारण माला (सुगन्ध, सुन्दरता आदि गुणों के कारण प्रिय) की भाँति शिर पर धारण किया जाता है।

व्याख्या- दुर्योधन की शासन-व्यवस्था का वर्णन करते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन को कभी धनुष् उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ी और न ही किसी ने कोई ऐसा अप्रिय कार्य किया कि उसे क्रोध करना पड़े। दूसरे राजा उसके गुणों से इस तरह प्रभावित हैं कि उसके आदेश को ससम्मान स्वीकार करते हैं। मनुष्य जिस प्रकार सुगन्ध, सौन्दर्य आदि से आकृष्ट होकर पुष्पमाला को शिर पर से गले में धारण करता है, उसी तरह राजा उसके आदेश को नतमस्तक होकर स्वीकार करते हैं।इस श्लोक में पूर्णोपमा अलंकार है। पूर्णोपमा अलंकार वहाँ होता है, जहाँ

उपमा के चारों तत्त्व शब्द रूप में गृहीत होते हैं। यहाँ ' शासन ' उपमेय, 'माला ' उपमान 'इव' सादृश्यवाचक शब्द तथा 'अनुराग ' साधारण धर्म है।

शब्द रचना- क्वचित् अव्यय है। सज्यम् - ज्यया सह वर्तते इति सज्यम्। 'तेन सहेति तुल्योगे' सूत्र से बहुव्रीहि समास। वोपसर्जनस्य' सूत्र से सह को स आदेश हो जाता है। कोपविजिह्मम् - कोपेन विजिह्मम् कोपविजिह्मम्। तृतीय तत्पुरुष। गुणानुरागेण - गुणेषु अनुरागः गुणानुरागः तेन। सप्तमी तत्पुरुष। हेतु अर्थ में तृतीया विभक्ति। नराधिपैः - नराणाम् अधिपाः नराधिपाः तैः। षष्ठी तत्पुरुष। अधिपः - अधि + पा + क। माल्यम् - माला एवं माल्यम्। माला +ष्यञ्। शिरोभिः - शिरस् शब्द का तृतीया बहुवचन का रूप है।

स यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं
निधाय दुःशासनमिद्धशासनः।
मखेष्वखिनोऽनुमतः पुरोधसा
धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम् ।। 22 ।।

अन्वय- इद्धशासनः सः नवयौवनोद्धतं दुःशासनं यौवराज्ये निधाय पुरोधसा अनुमतः अखिन्नः (सन्) मखेषु हव्येन हिरण्यरेतसं धिनोति।

हिन्दी अनुवाद- अनतिक्रमणीय आज्ञावाला वह (दुर्योधन) अभिनव यौवन से धृष्ट दुःशासन को युवराज बनाकर, स्वयं पुरोहित की अनुमति से आह्लादपूर्वक यज्ञों में हवनीय पदार्थों द्वारा अग्नि प्रदीप्त कर रहा है।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन की आज्ञा का कोई अतिक्रमण नहीं करता। वह अपने अनुज को युवराज बनाकर, उस पर राज्यसंचालन का दायित्व सौंप कर स्वयं धार्मिक कार्य में लगा रहता है। उसे राज्य की चिन्ता नहीं है, क्योंकि राज्य के सभी अंग मन्त्री, सेवक आदि अपने - अपने कार्य में लगे हुए हैं। अतः राज्य के सामान्य कार्यों के संचालन के लिए उसने परिपक्व बुद्धिवाले अपने अनुज को नियुक्त कर दिया है। स्वयं राज्य-कार्यभार से मुक्त होकर पुरोहित के निर्देश के अनुसार यज्ञ-सम्पादन में तल्लीन रहता है।

यहाँ द्वितीय चरण में व्यन्जनों की आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है।

शब्दरचना - इद्धशासनः - इद्धं शासनं यस्य सः। बहुव्रीहि। इद्धम् - इन्ध् +क्त। शासनम् - शास् + ल्युट्। नवयौवनोद्धतम् - यूनो भावः यौवनम्। यौवन - युवन् + अण्। उद्धतम् - उद् + हन् + क्त। दुःशासनम् - दुःखेन शास्यते इति दुःशासनम्। दुर् + शास् +युच्। तम्। यौवराज्ये - युवा चासौ राजा च युवराजः। कर्मधारय। युवराजस्य कर्म यौवराज्यं, तस्मिन्। युवराज + ष्यञ्- यौवराज्यम्। हिरण्यरेतसम् - हिरण्यं रेतो यस्य सः हिरण्यरेताः, तम्। बहुव्रीहि। धिनोति - धिन्व + लट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन।

बोध प्रश्न 1.

बहु विकल्पीय प्रश्न-

(क) दुर्योधन के राज्य मे बिना जुताई ही मानो फसल तैयार हो रही थी

(क) कुरूक्षेत्र में (ख) पालित राज्यों में

(ग) दोनों में (घ) किसी में नहीं

(ख) दुर्योधन के राज्य के धनुर्धारी क्या देकर उसका कल्याण चाहते हैं

(क) धन से (ख) प्राणों से

(ग) खेती से (घ) व्यवसाय से

रिक्त स्थानों कि पूर्ति कीजिए-

(ग) पृथ्वी मण्डल से समुद्र पर्यन्त तक का राज्य..............का है।

(घ) महीभृतां .... क्रिया: ।

नीचे कुछ वाक्य दिये हैं जिनमें सही वाक्यों के समक्ष (√) तथा गलत वाक्यो के समक्ष गलत (x) का निशान लगाइये-

(ङ) धन सम्पत्ति , कृषि तथा प्रजासुख का वर्णन श्लोक संख्या 17 में किया गया है। ( )

(च) योद्धागण एवं गुप्तचर का वर्णन श्लोक संख्या 21 में किया गया है। ( )

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति
प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः ।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यती-
रहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ।। 23।।

अन्वय- सः प्रलीनभूलापम् स्थिरायति आवारिधि भुवः मण्डलं प्रशासत् अपि त्वत् एष्यतीः भियः चिन्तयति एव। अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता।

हिन्दी अनुवाद- वह (दुर्योधन) शत्रुराजाओं से रहित, चिरस्थायी, समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर शासन करता हुआ भी आप (युधिष्ठिर) से सम्भावित विपत्तियों के विषय में सोचता ही रहता है। आश्चर्य है, बलवानों से विरोध का परिणाम दुःखद होता है।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन समुद्रपर्यन्त भूमण्डल पर शासन कर रहा है। कोई प्रतिद्वन्द्वी राजा अवशिष्ट नहीं रह गया है। शासन में स्थिरता भी प्रतीत हो रही है, तथापि वह पाण्डवों से भयभीत रहता है। दुर्योधन के भयभीत होने का औचित्य प्रतिपादित करते हुए वनेचर पुनः कहता हैं कि बलवानों के साथ शत्रुता का परिणाम भयावह होता है। ऊपर से निश्चिन्त जैसा प्रदर्शन होने पर भी मन में एक भय व्याप्त रहता है। बलवान् शत्रु द्वारा प्रत्यक्ष रूप से संकट उत्पन्न न किए जाने पर भी भावी संकट की सम्भावना से वर्तमान में भी सुख-शान्ति का अनुभव नहीं होता। यहाँ चतुर्थचरण सूक्ति है । इस सूक्ति द्वारा पूर्व कथन का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

शब्दरचना- भुवं पालयन्ति इति भूपालाः। उपपद समास। प्रलीनाः भूपालाः यस्मिंस्तत् प्रलीनभपालम्, तत्। बहुव्रीहि। स्थिरायति - स्थिरा आयतिः यस्य तत्। बहुव्रीहि। आवारिधि - आ वारिधिभ्य इति आवारिधि। अव्ययीभाव समास। प्रशासत्+प्र + शास् + शतृ। प्रथमा एकवचन। एष्यतीः - इ + लृट् + शतृ। द्वितीय बहुवचन। बलवद्विरोधिता - बलवता विरोधिता बलवद्वरोधिता। सुप्सुपा।

कथाप्रसंगेन जनैरुदाहृता-

दनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः ।

तवाभिधानाद् व्यथते नताननः

सुदुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ।। 24 ।।

अन्वय- कथाप्रसंगेन जनैः उदाहृतात् सुदुःसहात् तवाभिधानात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः नताननः (सः) कथाप्रसङ्गेन उदाहृतात् सुदुःसहात् तवाभिधानात् मन्त्रपदात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः नताननः उरगः इव व्यथते।

हिन्दी अनुवाद- बातचीत के प्रसंग में लोगों द्वारा उच्चरित अत्यधिक असह्य आपके नाम (को सुनने) से अर्जुन के पराक्रम का स्मरण हो जाने से झुके हुए शिर वाला (दुर्योधन), विषवैद्य द्वारा उच्चरित अत्यधिक असह्य, गरुड़ और वासुकि सर्प के नाम से युक्त मन्त्रपद से गरुड़ के पादक्षेप का स्मरण करने वाले (अतः) नतमस्तक सर्प की भाँति पीड़ित होता है।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि हे महाराज! बातचीत के प्रसंग में जब कोई आप का नाम लेता है तब दुर्योधन को अर्जुन के पराक्रम का स्मरण हो जाता है, उसका शिर झुक जाता है और वह पीड़ा का अनुभव करने लगता है। इसकी उपमा देते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन उस सर्प के समान हो जाता है जो विषवैद्य द्वारा उच्चरित मन्त्र में आए हुए गरुड़ और वासुकि के नाम को सुनकर गरुड़ के पादक्षेप का स्मरण कर दुःखी हो जाता है और शिर झुका लेता है।

शब्दरचना- कथाप्रसंगेन - कथायाः प्रसंग कथाप्रसंग: तेन। षष्ठी तत्पुरुष। कथाप्रससंग: -

विषवैद्यः तेन। उदाहृतात् - उद् + आ + हृ+क्त। तस्मात्। तवाभिधानात् - तश्च वश्च तवौ तार्क्ष्यवासुकी। द्वन्द्व समास। तवयोः अभिधानं यस्मिन् तत् तवाभिधानम्, तस्मात्। बहुव्रीहि। अभिधानम् - अभि + धा +ल्युट्। अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः - (उरगपक्षे) आखण्डलस्य सूनुः आखण्डलसूनुः। षष्ठी तत्पुरुष। तस्य विः आखण्डलसूनुविः। षष्ठी तत्पुरुष। अनुस्मृतः आखण्डलसूनुविक्रमः येन सः। बहुव्रीहि।

(दुर्योधनपक्षे) आखण्डलस्य सूनुः आखण्डलसूनुः। षष्ठी तत्पुरुष। आखण्डलसूनोः विक्रमः आखण्डलसूनुविक्रमः। षष्ठी तत्पुरुष। अनुस्मृतः आखण्डलसूनुविक्रमः येन सः। बहुव्रीहि। नताननः - नतम् आननं यस्य सः। बहुव्रीहि। व्यथते - व्यथ् लट्लकार, प्रथमपुरुष एकवचन।

तदाशु कर्तुं त्वयि जिह्ममुद्यते

विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।

परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां

प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः।। 25।।

अन्वय - तत् त्वयि जिह्मं कर्तुम् उद्यते तत्र विधेयम् उत्तरम् आशु विधीयताम् । परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशां गिरः प्रवृत्तिसाराः खलु।

हिन्दी अनुवाद - इसलिए आपके (युधिष्ठिर के) प्रति कुटिल व्यवहार करने में तत्पर उसके प्रति (दुर्योधन के प्रति) उचित प्रतिकार शीघ्र कीजिए। दूसरों के द्वारा कहे गए वचनों का संग्रह करने वाले मुझ जैसे लोगों के वचन निश्चित रूप से वृत्तान्त के सार मात्र होते हैं।

व्याख्या- युधिष्ठिर से हस्तिनापुर का वृत्तान्त निवेदन करने वाला वनेचर अपने कथन का उपसंहार करते हुए कहता है कि दुर्योधन आपके प्रति कपट पूर्ण व्यवहार कर रहा है। अतः आप उसके प्रति शीघ्र ही उचित प्रतिकार करें।

वनेचर ने 'विधेयम्' अर्थात् 'उचित' शब्द का प्रयोग करके यह स्पष्ट कर दिया है कि कर्तव्य का निर्देश करना गुप्तचर का कार्य नहीं है। यदि गुप्तचर ऐसा करता है, तो वह अपनी सीमा का, मर्यादा का उल्लंघन करता है।

श्लोक के तृतीय और चतुर्थ चरण में वह गुप्तचर की कार्यपद्धति का भी निर्देश करता है। गुप्तचर गुप्तरूप में लोगों की बात सुनता है। उस बात में से अपने लिए उपयोगी अंश को ग्रहण करता है। यही वचन का चयन है। इस प्रकार उपलब्ध सभी अंशों का पर्यालोचन करता हुआ वह एक निष्कर्ष पर पहुँचता है। यह निष्कर्ष ही समाचार या वृत्तान्त ही उसके कथन का सार है। 'प्रवृत्तिसार' अर्थात् 'वृत्तान्तरूप सार' कहने का एक अभिप्राय यह है कि वनेचर यह स्पष्ट करना चाहता है कि मेरी ओर से इस वृत्तान्त में कुछ जोड़ा नहीं गया है। बल्कि मैंने जो सुना है, उसका ही सार है। यदि गुप्तचर पूर्वाग्रहयुक्त होकर अपनी धारणा के अनुरूप परिस्थितियों का विश्लेषण करने लगता है और उपलब्ध तथ्यों को गौण बना देता है, तब वह सही निष्कर्ष नहीं निकाल सकता। ऐसी स्थिति में वास्तविकता से अनभिज्ञ राजा की योजना विफल हो सकती है और राज्य नष्ट हो सकता है। यहाँ सामान्य से विशेष का समर्थन हुआ है अतः अर्थान्तरन्यास है।

शब्दरचना- उद्यते - उद् + यम् + क्त। तस्मिन्। विधेयम् - वि + धा + यत्। उत्तरम् - अतिशयेन उत् इति उत्तरम् - उत् + तरप् अथवा उद् + तृ + अप्। परप्रणीतानि - परैः प्रणीतानि, इति। तृतीया तत्पुरुष। प्रवृत्तिसाराः - प्रवृत्तिः सारः यासां ताः। बहुव्रीहि। चिन्वताम् - चि + लट् शतृ। षष्ठी बहुवचन।

3.3.4 वनेचर का प्रस्थान एवं युधिष्ठिर का आगमन

दुर्योधन के राज्य संचालन से संबंधित प्राप्त विषय वस्तु को कुशलता के साथ युधिष्ठिर के समक्ष स्थापित करने के उपरान्त वनेचर प्रस्थान करता है तथा युधिष्ठिर द्रोपदी के महल में जाते हैं तथा वनेचर द्वारा कथित वृतान्त द्रोपदी से कहते हैं।

इतीरयित्वा गिरमात्तसत्क्रिये
गतेऽथ पत्यौ वनसन्निवासिनाम्।
प्रविश्य कृष्णासदनं महीभुजा
तदाचचक्षेऽनुजसन्निधौ वचः॥ 26 ॥

अन्वय- वनसन्निवासिनां पत्यौ इति गिरम् ईरयित्वा आत्तसत्क्रिये गते (सति) अथ महीभुजा कृष्णासदनं प्रविश्य अनुजसन्निधौ तद् वचः आचचक्षे।

हिन्दी अनुवाद - वनवासियों के स्वामी (वनेचर) के ऐसा कह कर तथा (पुरस्कार से) सम्मानित होकर चले जाने के बाद राजा (युधिष्ठिर) ने द्रौपदी के पास जाकर भाइयों के सामने उस वृत्तान्त को कहा।

व्याख्या - वनेचर की बात सुनकर युधिष्ठिर कार्यनिष्पन्न करने के लिए उसे पुरस्कृत करते हैं।

पुरस्कार-रूप सम्मान पाकर वनेचर चला जाता है। इसके बाद युधिष्ठिर द्रौपदी के पास जाते हैं। वहाँ भाइयों के समक्ष दौपदी से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहते हैं। भाइयों की उपस्थिति में द्रौपदी से वृत्तान्त निवेदन का प्रयोजन यह है कि वर्तमान परिस्थिति में भावी कार्यक्रम पर विचार-विमर्श किया जा सके।

शब्दरचना- वनसन्निवासिनाम् - वने सन्निवसन्ति इति वनसन्निवासिनः तेषाम्। उपपद तत्पुरुष। वन + सत् + नि +वस् + णिनि । ईरयित्वा - ईर + णिच् + क्त्वा । आत्तसत्क्रिये - आत्ता सत्क्रिया येन स आत्तसत्क्रियः, तस्मिन्। बहुव्रीहि। आत्ता - आ + दा +क्त, सत्क्रिया - सत् + कृ + श। महीभुजा - महीं भुनक्ति इति महीभुक् तेन। उपपद तत्पुरुष। मही + भुज् + क्विप्। कृष्णासदनम् - कृष्णायाः सदनम् इति कृष्णासदनम्। षष्ठी तत्पुरुष। अनुजसन्निधौ - अनु पश्चात् जायन्ते ये ते अनुजाः । उपपदतत्पुरुष । अनुजानां सन्निधिः अनुजसन्निधिः, तस्मिन् । षष्ठी तत्पुरुष। अनुजः - अनु + जन् + ड। सन्निधिः - सम् + नि + धा + किः। आचचक्षे - आङ् + ख्या (चक्षिङ्) + लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

3.5 द्रोपदी के कथन का उपक्रम

शत्रुओं की समृद्धि और उन्नति का समाचार सुनकर द्रोपदी अपने भावावेग को रोक नहीं पाती औरं राजा के क्रोध एव उत्साह को बढ़ाने के लिए अपने क्रोध का सहारा लेकर कहने के लिए उधृत होती है।

निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृती-
स्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनी-
रुदाजहार द्रुपदात्मजा गिरः।। 27 ।।

अन्वय- ततः द्रुपदात्मजा द्विषतां सिद्धिं निशम्य ततस्त्याः अपाकृतीः विनियन्तुम् अक्षमा नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीः गिरः उदाजहार।

हिन्दी अनुवाद - तब द्रौपदी ने शत्रुओं के उत्कर्ष को सुनकर उससे उठने वाले मानसिक विकारों को रोकने में असमर्थ होकर राजा (युधिष्ठिर) के क्रोध और उद्योग को उद्दीप्त करने के लिए कहना आरम्भ किया।

व्याख्या- युधिष्ठिर के मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने के बाद द्रौपदी कौरवों के उत्कर्ष की बात सुनकर तिलमिला उठती है। अपने मनोविकारों को वह नियन्त्रित नहीं कर पाती है और युधिष्ठिर के प्रति ऐसे मार्मिक वचन कहती है, जो युधिष्ठिर के क्रोध को प्रदीप्त कर दे और वे राज्य प्राप्ति हेतु उद्योग करने लगे।

इस श्लोक में ' त ' की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार है। मनोविकारों को न रोक पाना ही उत्तेजक वचन का कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

शब्दरचना - द्रुपदात्मजा - द्रुपदस्य आत्मजा द्रुपदात्मजा। षष्ठी तत्पुरुष। ततस्त्याः - ततः आगताः इति ततस्त्याः। ततस् + त्यप् टाप्। अक्षमा - न क्षमा अक्षमा। नञ् तत्पुरुष।

मन्युव्यवसाययोः दीपिन्यः मन्युव्यवसायदीपिन्यः, ताः। षष्ठीतत्पुरुष। व्यवसायः - वि + अव+सो +घञ्। दीपिनी - दीप् + णिनि + ङीप्।

3.6 द्रोपदी की उक्तियाँ

द्रोपदी अपने पति युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उत्सुक करने के लिए पूर्व में हुई घटनाओं को याद दिलाती हुए स्त्रियों की वार्ता के विषय में कहती है।

भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं
भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां
निरस्तनारीसमया दुराधयः।। 28 ।।

अन्वय- भवादृशेषु प्रमदाजनोदितम् अनुशासनम् अधिक्षेपः इव भवति । तथापि निरस्तनारीसमयाः दुराधयः मां वक्तुं व्यवसाययन्ति।

हिन्दी अनुवाद- आप जैसे लोगों के विषय में स्त्रियों द्वारा कहा गया उपदेशवचन अपमान-सदृश होता है। तथापि नारी की मर्यादा को नष्ट करने वाली मानसिक व्यथायें मुझे कहने के लिए बाध्य कर रही हैं।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर से अपनी बात कहने से पहले अपनी विवशता प्रकट करती है। युधिष्ठिर जैसे ज्ञानी व्यक्ति को स्त्री द्वारा उपदेशवचन तिरस्कार जैसा है। उनके ज्ञान और विवेक पर प्रश्नचिह्न लगाने वाला है। द्रौपदी यह अनुभव करती है, फिर भी स्वयं को नियन्त्रित नहीं कर पा रही है। अपनी बात कहने जा रही है। पत्नी पति को उपदेश दे, यह मर्यादा का अतिक्रमण है। किन्तु अतिक्रमण करना या न करना द्रौपदी के वश में नहीं है। उसके मन की पीड़ा उसे कहने के लिए बाध्य कर रही है। द्रौपदी का यह कथन उसकी मानसिक पीड़ा की तीव्रता व्यक्त करता है।

शब्दरचना- प्रमदाजनोदितम् - प्रमदा चासौ जनश्च प्रमदाजनः । कर्मधारय। प्रमदाजनेन उदितं प्रमदाजनोदितम् । तृतीया तत्पुरुष । प्रमदा - प्रमद् + अच् + टाप् । उदितम् - वद् +क्त । निरस्तनारीसमयाः - नारीणां समयाः नारीसमयाः। षष्ठी तत्पुरुष । निरस्ताः नारीसमयाः यैः ते निरस्तनारीसमयाः। बहुव्रीहि। निरस्तः निर् +अस् + क्त। समयः - सम् + इ +अच्। दुराधयः - दुष्टाः आधयः दुराधयः । प्रादि तत्पुरुष । अनुशासनम् - अनु +शास् +ल्युट्। वक्तुम् - वच् + तुमुन्। व्यवसाययन्ति - वि +अव् + सो + णिच् + लट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन ।

अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभि-
श्चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः।
त्वयात्महस्तेन मही मदच्युता
मतङ्गजेन स्रगिवापवर्जिता।। 29 ।।

अन्वय- आखण्डलतुल्यधामभिः स्ववंशजैः भूपतिभिः चिरम् अखण्डं धुता मही त्वया मदच्युता मतंगजेन स्रक् इव आत्महस्तेन अपवर्जिता।

हिन्दी अनुवाद - इन्द्र के समान तेजस्वी अपने पूर्वज राजाओं द्वारा चिरकाल तक पूर्णरूप से धारण की गई पृथ्वी तुम्हारे द्वारा अपने हाथ से उसी तरह दूर कर दी गई जैसे मतवाले हाथी द्वारा अपनी सूँड़ से दूर फेकी गयी माला।

व्याख्या - द्रौपदी युधिष्ठिर के अहंकार को, स्वाभिमान को उद्दीप्त करने के लिए अपने कुल के गौरवपूर्ण इतिहास का स्मरण करा रही है। वह कहती है कि जिस राज्य को पूर्वजों ने अपने पराक्रम से बहुत दिनों तक अपने अधीन रखा था, उस राज्य को आपने सहज की त्याग दिया। जिस प्रकार हाथी माला के गुणों को न पहचान कर उसे दूर फेंक देता है, उसी तरह आपने राज्य के महत्त्व को नहीं पहचाना और उसे अपने हाथ से निकल जाने दिया। द्रौपदी यहाँ तक भी बताना चाहती है कि आपके पास सामर्थ्य है। यदि आप चाहते तो राज्य की रक्षा कर सकते थे। आपने रक्षा नहीं की। इसलिए मैं समझती हूँ कि आपने स्वयं ही राज्य को छोड़ दिया है।

शब्दरचना- आखण्डलतुल्यधामभिः - आखण्डयति पर्वतान् इति आखण्डलः इन्द्रः। आखण्डलेन तुल्यं धाम येषां ते आखण्डलतुल्यधामानः तैः। बहुव्रीहि। यह पद 'भूपतिभिः' का विशेषण है। आखण्डलः - आ + खण्ड + कलच्। धामन् - धा + मनिन्। स्ववंशजैः - स्वस्य वंशः स्ववंशः। षष्ठी तत्पुरुष। स्ववंशात् जायन्ते ये ते स्ववंशजाः तैः। उपपद तत्पुरुष। मदच्युता - मदं च्योतति इति मदच्युत्, तेन। उपपद तत्पुरुष। मद + च्युत् + क्विप्। मतंगजेन - मतंगात् जायते इति मतंगजः तेन। उपपद तत्पुरुष। मतङ्ग + जन् + ड। आत्महस्तेन - आत्मनः हस्तः आत्महस्तः, तेन।

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं

भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।

प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान्

असंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ।। 30 ।।

अन्वय- मूढधियः ते पराभवं व्रजन्ति ये मायाविषु मायिनः न भवन्ति। हि शठाः तथाविधान् असंवृतांगान् निशिताः इपवः इव प्रविश्य घ्नन्ति।

हिन्दी अनुवाद - विवेकहीन वे लोग पराजित होते हैं, जो कपटपूर्ण व्यवहार करने वाले लोगों के प्रति कपटपूर्ण व्यवहार नहीं करते। क्योंकि धूर्त्त लोग इनका विश्वासपात्र बनकर इन्हें वैसे ही नष्ट कर देते हैं, जैसे कवच आदि से अनाच्छादित शरीर वाले व्यक्ति के अन्दर प्रवेश करके तीक्ष्ण बाण उसे नष्ट कर देते हैं।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर से 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति का अनुसरण करने के लिए कह रही है। उसका कहना है कि जिन्हें कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान नहीं है, जो समय और परिस्थिति के अनुरूप आचरण नहीं करते, उनका विनाश अवश्यम्भावी है। मायावी व्यक्ति के साथ मायावी जैसा ही आचरण करना चाहिए। वहाँ सज्जनता अहितकर होती है। जिस प्रकार तीक्ष्ण बाण, कवच न धारण करने वाले व्यक्ति के भीतर सरलता से प्रवेश कर जाते हैं, और उसे मार

डालते हैं, उसी प्रकार धूर्त्त लोग सज्जन व्यक्ति की अन्तरंगता प्राप्त करके उसे नष्ट कर देते हैं। वहाँ माया को अंग के आवरणरूप में प्रस्तुत किया गया है। धूर्त्त लोगों से रक्षा के लिए माया कवच है। जिस प्रकार कवच अंग नहीं अपितु अंग का रक्षक है, वैसे ही माया को स्वभाव नहीं समझना चाहिए, उसे गुणरूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए, अपितु अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए विशेष परिस्थिति में उसका आश्रय लेना चाहिए। विशेष परिस्थिति में अर्थात् मायावियों के साथ भी सज्जनता का व्यवहार अहितकर होता है। इस श्लोक में काव्यलिंग तथा उपमा के कारण संसृष्टि अलंकार है।

शब्दरचना- मूढधियः - मूढा धीः येषां ते। बहुव्रीहि। मूढा - मुह् + क्त +टाप्। धीः - ध्यै +क्विप्। मायाविषु - माया अस्ति एषाम् इति मायाविनः, तेषु। माया + विनि। मायिनः - माया अस्ति एषाम् इति मायिनः। माया + इनि। असंवृताङ्गान् - न संवृतम् असंवृतम्। नञ् तत्पुरुष। असंवृतानि अंगानि येषां ते असंवृतांगा: तान्। बहुव्रीहि। निशिताः - नि +शो + क्त। प्रविश्य - प्र + विश् + क्त्वा (ल्यप्)। घ्नन्ति - हन् धातु लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन।

टिप्पणी- इस श्लोक का पूर्वार्द्ध सूक्ति है।

बोध प्रश्न .2

क. अहोदुरन्ता बलवद्विरोधिता , किसके लिए कहा गया है -

क. वनेचर ख. युधिष्ठिर ग. दुर्योधन घ. श्रीकृष्ण

ख. द्रोपदी उद्योग करनेके लिए किससे कहती है

क. भीम से ख. अर्जुन से ग. युधिष्ठिर से घ. दुर्योधन से

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

ग. युधिष्ठिर वृत्तान्त सुनने के बाद .... महल में जाते हैं।

घ. अर्जुन के पराक्रम का स्मरण मात्र से .... सिर झुक जाता है।

निम्नलिखित में सही गलत का निशान लगाइये

ङ. वनेचर युधिष्ठिर का सैनिक है ( )

च. महाभारत काल स्त्री प्रधान काल था ( )

3.7 सारांश

वनेचर अपने स्वामी युधिष्ठिर के आदेशानुसार प्राप्त सूचना उनके समक्ष प्रस्तुत करता है जिससे दुर्योधन के धन ऐश्वर्य मित्रों के उसका व्यवहार धर्म परायणता सेवकादि के प्रति व्यवहार आदि का स्थापना करता है इसके पश्चात युधिष्ठिर द्रोपदी के महल में जाते हैं तथा वनेचर के वृतान्त को बताते हैं इसके बाद द्रोपदी राजा को युद्ध के लिए प्रेरित करने वाले वचनों को कहती है। जिसका सम्पूर्ण अध्ययन आप इकाई के माध्यम से प्राप्त कर लिए होंगे। इस इकाई में राजा का

राज्य के प्रति क्या व्यवहार होना चाहिए तथा एक स्त्री का पति के प्रति क्या व्यवहार होना चाहिए इन बातों का स्थापन किया गया है। मायावी व्यक्ति के साथ मायावी जैसा ही आचरण करना चाहिए। वहाँ सज्जनता अहितकर होती है। जिस प्रकार तीक्ष्ण बाण, कवच न धारण करने वाले व्यक्ति के भीतर सरलता से प्रवेश कर जाते हैं, और उसे मार डालते हैं, उसी प्रकार धूर्त्त लोग सज्जन व्यक्ति की अन्तरंगता प्राप्त करके उसे नष्ट कर देते हैं। अत: प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप इस इकाई से प्राप्त शिक्षाओं को बता सकेंगें।

3.8 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
मूढधियः -	विवेकहीन, मन्दबुद्धि वाले लोग
द्रुपदात्मजा	द्रुपद की पुत्री, द्रौपदी
निशम्य	सुनकर
मन्युव्यसायंदीपिनीः	क्रोध और उद्योग को उद्दीप्त करने वाली
अपाकृतीः	विकारों को, भावों को
प्रमदाजनोदितम् -	स्त्रियों द्वारा कहा गया
आखण्डलतुल्यधामभिः	इन्द्र के समान तेजस्वी
निशिताः	तीक्ष्ण

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1.

क. क	ख . ख	ग. दुर्योधन	घ . सच्चरितैश्चरैः
ङ. सही	च . गलत		

बोध प्रश्न 2.

क. ग	ख. ग	ग. द्रोपदी	घ .दुर्योधन का
ङ. गलत	च.गलत		

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारवि – किरातार्जुनीयम्
2. वामन शिवराम आप्टे - संस्कृत - हिन्दी कोश

3.11 अन्य उपयोगी पुस्तकें

1. सिद्धान्त कौमुदी - वरदराजाचार्य
2. काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट
3. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वनेचर की उक्तियों की समीक्षा कीजिए।
2. दुर्योधन के प्रजा सम्बन्धित स्वरूप की स्थापना कीजिए।
3. द्रोपदी द्वारा कथित वाक्यों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 4 . श्लोक संख्या 31 से 46 तक

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

भाषा भावाभिव्यक्ति का साधन है। भाषा शब्दमय होती है और भाव अर्थ रूप होते हैं। शब्द और अर्थ का साहचर्य ही साहित्य है। भारवि शब्द और अर्थ के प्रति विशेष जागरूक है क्योंकि इन्हें गम्भीर और व्यापक अर्थ के सन्निवेश की दृष्टि से शब्द-योजना करनी है। यह स्पष्ट है कि विशेष अर्थ के लिए विशेष शब्द का चयन करने में कवि को विशेष प्रयास करना पड़ता है। अतः काव्य में स्वाभाविकता का अभाव तो होता ही है। प्रायः क्लिष्टता भी आ जाती है। भारवि भी मानते है कि बड़े पुण्य से ऐसी वाणी प्राप्त होती है, जिसका अर्थ तत्काल ज्ञात हो जाए और वह अर्थ गम्भीर भी हो। भारवि की भाषा भावग्रहण में पूर्ण सक्षम है। वर्ण्य-विषय के अनुरूप वह कहीं सरल गति से चलती है तो कहीं वक्र गति का आश्रय लेती है प्रथम सर्ग में कवि ने वंशस्थ छन्द में राजनीति का वर्णन करके यह मान्यता स्थापित की है कि राजनीति निरूपण के लिये उपयुक्त छन्द वंशस्थ ही है। सर्ग के आरम्भ में वनेचर युधिष्ठिर के समक्ष दुर्योधन की शासन व्यवस्था का वर्णन करता है। वह वर्णन यथार्थ परक है। द्रोपदी युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उत्तेजित करना चाहती है। उसकी वाणी में तीक्ष्णता है।

इस इकाई के माध्यम से आप द्रौपदी के द्वारा युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिये अनेक प्रकार के प्रयास का अध्ययन करेंगे। द्रोपदी अपने सम्मान तथा अपने पतियों के सम्मान को पुनः प्राप्त कराने के लिये युधिष्ठिर के समक्ष किन-किन बातों का सहारा लेती है इस इकाई का मुख्य विषय है। भारवि ने इस चित्र का बड़े ही विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। वे जिस वर्ण्य को प्रस्तुत करते हैं उसका वर्णन करते ही जाते है। जिससे मूलकथा विच्छिन्न - सी प्रतीत होने लगती है। किन्तु यह उनकी विशेषता है क्योंकि कथानक अतिसंक्षिप्त है। इसे वर्णन द्वारा ही विस्तृत किया जा सकता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- युधिष्ठिर के पूर्व जीवन का वर्णन कर पायेंगे।
- द्रौपदी के द्वारा युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिये अनेक प्रकार के प्रयास का वर्णन कर सकेंगे।
- क्रोधशून्य व्यक्ति का कोई आदर नही करता यह बता पायेंगे।
- श्लोंको की व्याख्या कर सकेंगे।
- श्लोक में प्रयुक्त छन्द एवं अलंकार बता पायेंगे।

4 . 3 द्रोपदी की उक्तियाँ

युधिष्ठिर के द्वारा गुप्तचर के रूप में दुर्योधन के राज्य में भेजे गये वनेचर के द्वारा प्राप्त सूचनाओं को प्राप्त करने के बाद युधिष्ठिर द्रोपदी के महल में जाते हैं तथा वनेचर द्वारा प्राप्त सभी सूचनायें

द्रोपदी को बताते हैं। जिस पर द्रोपदी अपने आपको रोक नहीं पाती तथा प्रत्युत्तर में युधिष्ठिर से उनके सहित पूरे पाण्डवों के दुःखों का वर्णन करते हुए युद्ध के लिये प्रेरित करने का प्रयास करती है।

4.3.1 शत्रु द्वारा राजलक्ष्मी का हरण

जिस तरह दूसरों से अपनी पत्नी का अपहरण कराना लज्जापरक और मानहानिकारी होता है उसी प्रकार राजलक्ष्मी का भी शत्रुओं से अपहरण कराना महालज्जा का कारक है। यही बात द्रोपदी युधिष्ठिर को समझाते हुए कहती है।

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारये-
न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम्॥ 31॥

अन्वय- अनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी त्वत् अन्यः कः इव नराधिपः गुणानुरक्तां कुलजां मनोरमाम् आत्मवधूम् इव (गुणानुरक्तां कुलजां मनोरमां) श्रियं परैः अपहारयेत्।

हिन्दी अनुवाद- अनुकूल साधनों वाला, अपने वंश पर गर्व करने वाला आपके अतिरिक्त कौन-सा राजा, गुणों से प्रेम करने वाली, गुणवती, उच्च कुल में उत्पन्न और मन को प्रिय लगने वाली भार्या के समान (राजनीति के छः) गुणों के कारण प्रेम करने वाली, वंशपरम्परा से प्राप्त हुई मनोहर राजलक्ष्मी को (स्वयं ही) शत्रुओं द्वारा अपहृत कराएगा।

व्याख्या- द्रौपदी राजलक्ष्मी की तुलना एक पत्नी से करती हुई युधिष्ठिर को उस पति के समान बताना चाहती है, जो अपने पास सामर्थ्य होते हुए भी शत्रुओं द्वारा अपनी प्रिय पत्नी के अपहरण का विरोध नहीं करता और निन्दा का पात्र बन जाता है।

पति का अर्थ है-रक्षक। पति पत्नी का रक्षक है। यदि पत्नी गुणवती न हो, उच्च कुल की न हो और प्रिय न हो तो उसकी उपेक्षा सम्भव है। किन्तु गुणवती, उच्च कुल में उत्पन्न और प्रिय पत्नी का अपहरण हो रहा हो और रक्षा करने में समर्थ होता हुआ भी पति उसकी रक्षा न करे तो वह लोकनिन्दा का पात्र बन जाता है। ऐसा पति अपहरण का समर्थक ही माना जाएगा।

आप राजलक्ष्मी के पति हैं। यह राजलक्ष्मी राजनीति के छः गुणों- सन्धि-विग्रह-मान-आसन-संश्रय-द्वैधीभाव-के कारण आप से प्रेम करने वाली है, आपको वंश-परम्परा से प्राप्त है और प्रिय भी है। ऐसी राजलक्ष्मी का आपके सामने शत्रुओं द्वारा अपहरण हुआ और सामर्थ्य रहते हुए भी आपने उसका प्रतिरोध नहीं किया। अतः यही कहा जाएगा कि आपने स्वयं ही राजलक्ष्मी का अपहरण कराया है। राजलक्ष्मी वंशपरम्परा से पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त हुई है, अतः उसे स्वेच्छा से नष्ट करने का भी अधिकार आपको नहीं है। दूसरी बात यह है कि आप को भी अपने कुल का अभिमान है। एक ओर कुल का अभिमान और दूसरी ओर कुल के उत्तराधिकार में प्राप्त राजलक्ष्मी का अपहरण करवाना - ये दोनों बातें असंगत है।आपके अतिरिक्त कोई राजा ऐसा असंगत आचरण नहीं करेगा । यहाँ श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा अलंकार है।

शब्दार्थ - अनुरक्तसाधनः - अनुरक्तं साधनं यस्य सः। बहुव्रीहि। अनुरक्तम् - अनु + रञ्ज् + क्त।

साधनम् - साध् + णिच् + ल्युट्। कुलाभिमानी - कुलस्य अभिमानः कुलाभिमानः षष्ठी तत्पुरुष कुलाभिमानः अस्ति अस्य इति कुलाभिमानी। अभिमानः - अभि +मन् + घञ्। गुणानुरक्ताम् - गुणेषु अनुरक्ता गुणानुरक्ता, ताम्। तृतीया तत्पुरुष। कुलजाम् - कुलात् कुले वा जाता कुलजा, ताम्। उपपद तत्पुरुष। कुल + जन् + ड + टाप्। मनोरमाम् - रमयति इति रमा। मनसो रमा मनोरमा, ताम्, षष्ठी तत्पुरुष। रमा - रम् + णिच् + अच् + टाप्। आत्मवधूम् - आत्मनः वधूः आत्मवधूः, ताम्। षष्ठी तत्पुरुष। अपहारयेत् - अप् + हृ + णिच् + विधिलिङ् प्रथम पुरुष एकवचन।

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते
विवर्तमानं नरदेव वर्त्मनि।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः
शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः ।। 32 ।।

अन्वय- नरदेव! एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्तमानं भवन्तम् उदीरितः मन्युः शुष्कं शमीतरुम् उच्छिखः अग्निरिव कथं न ज्वलयति।

हिन्दी अनुवाद- हे राजन ! इस समय मनस्वी लोगों द्वारा निन्दित मार्ग पर चलने वाले आपको उद्दीपित क्रोध सूखे हुए शमीवृक्ष को धधकती आग की तरह क्यों नहीं जला देता।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करना चाहती है। इसीलिए ऐसी बातें कहती है, जो उनके मर्म पर प्रहार कर सकें। किन्तु युधिष्ठिर क्रोध करने का नाम नहीं लेते। वह कहती है- शत्रुओं द्वारा उत्पन्न की गई जिस प्रकार की दुर्गति आप भोग रहे हैं, वह स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए उचित नहीं है। इस स्थिति में आप का क्रोध स्वयं तो उद्दीप्त नहीं ही हो रहा है, दूसरों द्वारा उद्दीपित किये जाने पर भी उद्दीप्त होकर आपको नहीं जला रहा है, यह आश्चर्य की बात है। कोई स्वाभिमानी व्यक्ति शत्रुओं द्वारा बार-बार किये गये अपमान को इस तरह चुपचाप सह नहीं सकता। अतः आपको अपमान के प्रतिशोध और राज्य-प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए।

इस श्लोक में 'त' और 'न' की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास तथा उपमा अलंकार है।

शब्दरचना - एतर्हि - इदम् + र्हिल्। 'इदम्' को 'एत' आदेश। मनस्विगर्हिते - प्रशस्तं मनः एषाम् इति मनस्विनः। मनस्विभिः गर्हितं मनस्विगर्हितं, तस्मिन्। तृतीया तत्पुरुष। मनस्विन् - मनस् + विनि। गर्हितम् - गर्ह + क्त। विवर्तमानं - वि + वृत् + लट् (शानच्)। उदीरितः - उद् + ईर् + णिच् + क्त। शमीतरुम् - शमी चासौ तरुश्च इति, तम्। कर्मधारय। उच्छिखः - उद्गता शिखा यस्य सः उच्छिखः। बहुव्रीहि।

अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना
न जातहार्देन न विद्विषादरः।। 33।।

अन्वय- अवन्ध्यकोपस्य आपदां विहन्तुः देहिनः स्वयम् एव वश्याः भवन्ति। अमर्षशून्येन जन्तुना जातहार्देन (सता) जनस्य आदरः न, विद्विषा च (सता) दरः न (भवन्ति)।

हिन्दी अनुवाद - जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता है और जो (निर्धनतारूप) विपत्तियों को (धन देकर) नष्ट करने वाला है, उसके वंश में सभी प्राणी स्वयं अधीन हो जाते हैं। क्रोधहीन क्षुद्र (अदाता) प्राणी के मित्र बन जाने पर कोई उसका आदर नहीं करता और शत्रु बन जाने पर भय (भी) नहीं करता।

व्याख्या- द्रौपदी कहती है कि हे राजन! जिस व्यक्ति का क्रोध निष्फल नहीं होता और जो समय-समय पर धन देकर लोगों की कठिनाइयों को दूर करता है, उसके वश में सभी प्राणी अनायास ही हो जाते हैं। किन्तु जो क्रोध करना जानता ही नहीं है और कुछ देता भी नहीं है, ऐसा व्यक्ति यदि मित्र रहे, तो लोग उसका आदर नहीं करते और शत्रु रहे, तो उससे डरते भी नहीं हैं।

युधिष्ठिर शत्रुओं पर क्रोध नहीं कर रहे हैं और राज्यविहीन होने के कारण धन देकर लोगों की सहायता करने की स्थिति में भी नहीं है। अतः इनसे मित्रता और शत्रुता का कोई अर्थ नहीं है। स्वार्थ या भय के कारण ही लोग अनुराग रखते हैं। द्रौपदी के कथन का अभिप्राय यह है कि शत्रुओं पर आक्रमण करके युधिष्ठिर को अपना राज्य प्राप्त करना चाहिए और प्रजा का कष्ट दूर करके उसका सम्मान प्राप्त करना चाहिए। ऐसा न करने पर वे महत्त्वहीन हो जायेंगे। यहाँ 'विद्विषादरः' में श्लेष अलङ्कार है।

शब्दरचना- अबन्ध्यकोपस्य - न बन्ध्यः अबन्ध्यः। नञ् तत्पुरुष। अबन्ध्यः कोपः यस्य सः अबन्ध्यकोपः, तस्य। बहुव्रीहि। आपदाम् - आ + पद् + क्विप्, षष्ठी बहुवचन। विहन्तुः - वि + हन् +तृच् + षष्ठी एकवचन। वश्याः - वशं गताः वश्याः। वश् + यत्। प्रथमा बहुवचन। अमर्षशून्येन - न मर्षः अमर्षः। नञ् तत्पुरुष। अमर्षेण शून्यः अमर्षशून्यः तेन। तृतीया तत्पुरुष। जातहार्देन - हदयस्य कर्म हार्दम्। जातम् - जन् +क्त। जातं हार्दम् अस्य असौ जातहार्दः, तेन। बहुव्रीहि।

टिप्पणी -1- इस श्लोक का पूर्वाद्ध सूक्ति है।

2- 'विद्विषादरः' को दो रूपों में पढ़ना होगा-विद्विषा आदरः और विद्विषा दरः।

परिभ्रमँल्लोहितचन्दनोचितः
पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषितः।
महारथः सत्यधनस्य मानसं
दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः॥ 34॥

अन्वय- लोहितचन्दनोचितः महारथः अयं वृकोदरः रेणुरूषितः पदातिः अन्तर्गिरि परिभ्रमन् सत्यधनस्य मानसं न दुनोति कच्चित्।

हिन्दी अनुवाद- लालचन्दन लगाने वाले, विशाल रथ पर चलने वाले, ये भीम (इस समय) धूलिधूसरित, पैदल पर्वतों पर घूमते हुए (आप जैसे) सत्यवादी के मन को सन्तप्त नहीं करते क्या

व्याख्या- द्रौपदी भीम द्वारा पहले अनुभव किए गए सुख और इस समय अनुभव किए जा रहे दुःख का स्मरण कराते हुए युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने का प्रयास कर रही है। वह कहती है कि जो भीम राजमहल में रहते हुए लालचन्दन का लेप लगाते थे, वही इस समय (वनवास काल

में) धूलि से लिप्त रहते हैं। जो भीम पहले विशाल रथ पर चलते थे, वही इस समय पैदल चलते हैं। भीम को इस रूप में देखकर आपके मन में दुःख नहीं होता क्या ? यदि दुःख होता तो सच्चाई को ही अपना सर्वस्व मानकर आप इस तरह शान्त न रहते। यहाँ परिकर अलंकार है।

शब्दरचना- लोहितचन्दनोचितः - लोहितं च तत् चन्दनं लोहितचन्दनम्। कर्मधारय। उचितं लोहिचन्दनम् अस्य इति लोहितचन्दनोचितः। बहुव्रीहि। महारथः - महान् रथः अस्य इति महारथः। बहुव्रीहि। वृकोदरः - वृकस्य उदरम् इव उदरम् यस्य सः वृकोदरः। बहुव्रीहि। रेणुरूषितः - रेणुभिः रूषितः। तृतीया तत्पुरुष। पदातिः पादाभ्याम् अतति इति पदातिः। उपपद तत्पुरुष। पाद + अत्+इञ्। अन्तर्गिरि गिरिषु अन्तः इति अन्तर्गिरि। अव्ययीभाव समास। परिभ्रमन् - परि +भ्रम् + लट् + शतृ। प्रथमा एकवचन। सत्यधनस्य सत्यं धनम् अस्य इति सत्यधनः, तस्य। बहुव्रीहि। दुनोति+ दु +लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

4.3.2 पाण्डवों के स्वरूप का वर्णन

पाण्डवों के वन आगमन के बाद उनके शरीर मन तथा आत्मा में जो निर्बलता आयी है उसको बताते हुए द्रोपदी युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करने का प्रयास कर रही है।

विजित्य यः प्राज्यमयच्छदुत्तरान्
कुरूनकुप्यं वसु वासवोपमः।
स वल्कवासांसि तवाधुनाऽऽहरन्
करोति मन्युं न कथं धनञ्जयः।। 35।।

अन्वय- वासवोपः यः उत्तरान् कुरून् विजित्य प्राज्यम् अकुप्यं वसु अयच्छत् धनन्जयः अधुना तव वल्कवांसासि आहरन् (तव) मन्युं कथं न करोति ?

हिन्दी अनुवाद - इन्द्रतुल्य जिस (अर्जुन) ने उत्तर कुरुदेश को जीतकर प्रभूत मात्रा में सोना-चाँदी रूप धन दिया था, वही अर्जुन इस समय आपके लिए वल्कलवस्त्र लाता हुआ आपके क्रोध को क्यों नहीं उत्पन्न करता ?

व्याख्या- इस पद्य में द्रौपदी अर्जुन की दयनीय स्थिति का उल्लेख करते हुए युधिष्ठिर को उत्तेजित करने का प्रयास कर रही है। वह कहती है कि अर्जुन ने दिग्विजय के समय उत्तर कुरुदेश को जीतकर बहुत सा धन लाकर दिया था। वही पराक्रमी अर्जुन इस समय आपके लिए वल्कलवस्त्र ला रहे हैं। यह कार्य अर्जुन जैसे पराक्रमी के लिए उचित नहीं है। उनके पराक्रम का अपमान है, तथापि आप को क्रोध नहीं आ रहा है। यह बड़े आश्चर्य का विषय है। अर्थात् अर्जुन को इस रूप में देखकर तो आप को क्रोध आना चाहिए।

यहाँ छेकानुप्रास अलंकार है।

शब्दरचना- वासवः - उपमा यस्य सः वासवोपमः। बहुव्रीहि। विजित्य - वि + जि + क्त्वा ल्यप्, अकुप्यम् - न कुप्यम् अकुप्यम्। नञ् तत्पुरुष। कुप्यम् - कुप् + क्यप्। गुप् के ग को क हो जाताहै। कुप्य का अर्थ है, सोना-चाँदी से भिन्न धातु। सोना-चाँदी को अकुप्य कहते हैं। अयच्छत् - दा धातु लङ्लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप। 'दा' को 'यच्छ' आदेश हो जाता

है। धनन्जयः – धनं जयति इति धनन्जयः। उपपद तत्पुरुष। धन + जि +खच्। धन जीतने के कारण ही अर्जुन को धनंजय कहते हैं। वल्कवासांसि - वल्कानि एव वासांसि। कर्मधारय। आहरन् - आ + हृ + लट् +शतृ। प्रथमा एकवचन।

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती
कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ
विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम् ।। 36।।

अन्वय- वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक् कचाचितौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयन् त्वं धृतिसंयमौ बाधितुं कथं न उत्सहसे।

हिन्दी अनुवाद- वन की भूमि पर सोने से कठोर शरीर वाले, चारों ओर बिखरे हुए बालों से ढके हुए, पर्वतीय हाथियों के समान इन दोनों यमलों (नकुल और सहदेव) को देखते हुए आप धैर्य और संयम का परित्याग करने के लिए क्यों नहीं उद्यत होते ?

व्याख्या- नकुल और सहदेव की दयनीय स्थिति का उल्लेख करती हुई द्रौपदी युधिष्ठिर को अपना धैर्य छोड़ कर युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। जंगल की भूमि पर सोने से नकुल और सहदेव का शरीर कठोर हो गया है। शिर के बाल चारों ओर शरीर पर बिखरे रहते हैं। पर्वतीय हाथी की भाँति शरीर नकुल और सहदेव युधिष्ठिर की भावना का सम्मान करते हुए चुपचुप कष्ट सह रहे हैं। द्रौपदी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है। इसका कहने का अभिप्राय यह है कि युधिष्ठिर को अपने लिए न सही, अपने प्रिय अनुजों की (नकुल और सहदेव की) इस अवस्था को देखकर तो धैर्य की सीमा तोड़ देनी चाहिए।

यहाँ 'कृताकृती' में छेकानुप्रास 'अगजौ गजौ' तथा 'सयमौ, यमौ' में यमक अलङ्कार तथा ''गजौ इव यमौ'' के कारण उपमा अलङ्कार है। तीनों अलङ्कारों की निरपेक्ष स्थिति है, अतः संसृष्टि अलङ्कार है।

शब्दरचना - वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती - वनस्य अन्तः वनान्तः। षष्ठी तत्पुरुष। वनान्तः एव शय्या वनान्तशय्या। कर्मधारय। वनान्तशय्यया कठिनीकृता वनान्तशय्याकठिनीकृता। तृतीया तत्पुरुष। वनान्तशय्याकठिनीकृता आकृतिः ययोः तौ वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती। बहुव्रीहि। कचाचितौ - कचैः आचितौ कचाचितौ। तृतीया तत्पुरुष। आचितः - आ + चि + क्त। अगजौ - न गच्छति इति अगः। अगे जातौ अगजौ। उपपद तत्पुरुष। धृतिसंयमौ - धृतिश्च संयमश्च धृतिसंयमौ तौ। द्वन्द्व समास। विलोकयन् - वि+लोक् + णिच् + लट् (शतृ) प्रथमा एकवचन। बाधितुम् - बाध् + तुमुन्। उत्सहसे - उत् + सह् + लट् मध्यमपुरुष एकवचन।

इमामहं वेद न तावकीं धियं
विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः।
विचिन्तयन्त्या भवदापदं परां
रुजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः ।। 37 ।।

अन्वय- इमां तावकीं धियम् अहं न वेद । चित्तवृत्तयः विचित्ररूपाः खलु। परां भवदापदं विचिन्तयन्त्या मम चेतः आधयः प्रसभं रूजन्ति।

हिन्दी अनुवाद- आपकी इस बुद्धि को मैं नहीं समझ पा रही हूँ। क्योंकि चित्तवृत्तियाँ (लोगों की चित्तवृत्तियाँ) विचित्र होती हैं। (किन्तु) आपकी महती विपत्ति पर विचार करने पर मानसिक व्यथायें मेरे मन को हठात् पीड़ित करती हैं।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर के धैर्य से ऊबकर उनकी बुद्धि पर आक्षेप कर रही है। कहती है कि मुझे समझ में नहीं आता कि आपकी बुद्धि कैसी है ? लोगों की मनोवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। उनके सोचने के ढंग अलग-अलग होते हैं। आपकी इस दुर्दशा को सोच-सोच कर मैं तो दुःखी हो रही हूँ। किन्तु आपको स्वयं कोई पीड़ा नहीं हो रही और इसलिए आप इस दुर्दशा के निवारण का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। कैसी विचित्र बात है कि विपत्ति देखने वाला तो दुःखी हो रहा है।

द्रौपदी के कथन का अभिप्राय यह है कि इतनी बड़ी विपत्ति को चुपचाप सह लेना उचित नहीं है। अतः आपको इसका निवारण करना चाहिए।

शब्दरचना- तावकीम् - तव इयं तावकी, ताम्। युष्मद् + अण्-ङीप्। युष्मद् के स्थान पर तवक आदेश हो जाता है। धियम् - ध्यै + क्विप्। चित्तवृत्तयः - चित्तानां वृत्तयः चित्तवृत्तयः। षष्ठी तत्पुरुष। विचित्ररूपाः - विचित्रं रूपं यासां, ताः विचित्ररूपाः। बहुव्रीहि। भवदापदं - भवतः आपद् इति भवदापद्, ताम्। षष्ठी तत्पुरुष। आपद् - आ + पद् + क्विप्। विचिन्तयन्त्याः - वि + चिन्त् + णिच् + लट् शतृ-ङीप्। षष्ठी एकवचन। रुजन्ति - रुज् धातु, लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन।

4.3.3 युधिष्ठिर के पूर्व जीवन का वर्णन

द्रोपदी युधिष्ठिर के वनागमन से पूर्व के जीवन जो कि एक राज्य का राजा रहते हुए अनेक सुख-सुविधाओं में रहा हो और अब एक भिखारी के समान जंगलों में भटक रहा है, इसको बताते हुए युद्ध के लिये प्रेरित कर रही है।

पुराऽधिरूढः शयनं महाधनं
विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः।
अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं
जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः ।। 38 ।।

अन्वय- यः (त्वं) महाधनं शयनम् अधिरूढः स्तुतिगीतिमङ्गलैः पुरा विबोध्यसे सः (त्वं) अदभ्रदर्भां स्थलीम् अधिशय्य अशिवैः शिवारुतैः निद्रां जहासि।

हिन्दी अनुवाद- जो (आप) पहले बहुमूल्य शय्या पर सोये हुए स्तुति और गीति रूप मांगलिक शब्दों से जगाये जाते थे, वही (आप इस समय) कुशों से भरी हुई वन भूमि पर सोकर अमाङ्गलिक श्रृगालीशब्दों से जगाये जाते हैं।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर को पूर्व की सुखानुभूति का स्मरण कराकर वर्तमान की दुःखानुभूति

की तीक्ष्णता का बोध कराना चाहती है। तीक्ष्णता के बोध के साथ ही दुर्योधन के प्रति आक्रोश उत्पन्न होगा और युधिष्ठिर युद्ध के लिए उद्योग कर सकते हैं। वह कहती है कि पहले आप बहुमूल्य शय्या पर सोते थे और स्तुतिपाठकों के सुन्दर गीत से जगाये जाते थे, किन्तु आज कुशों से भरी वन की ऊँची-नीची जमीन पर सोते हैं, और स्तुतिपाठकों के सुन्दर गीतों के स्थान पर शृगालियों के अशुभ शब्दों को सुनते हुए जगते हैं।

यहाँ 'शिवैः शिवां' में छेकानुप्रास है।

शब्दरचना- महाधनं - महत् धनं यस्य तद् महाधनम्। बहुव्रीहि। शयनम् - शय्यते अस्मिन् इति शयनम्। शी + ल्युट्। स्तुतिगीतिमङ्गलैः - स्तुतयश्च गीतयश्च स्तुतिगीतयः। द्वन्द्व। स्तुतिगीतयः एव मङ्गलानि स्तुतिगीतिमङ्गलानि, तैः। कर्मधारय। विबोध्यसे - वि + वुध् + णिच् + लट्, मध्यमपुरुष एकवचन। अदभ्रदर्भाम् - अदभ्राः दर्भाः यस्यां सा अदभ्रदर्भा, ताम्। बहुव्रीहि। अधिशय्य - अधि + शी + क्त्वा- ल्यप्। अधिवैः - न शिवानि अशिवानि तैः। नञ् तत्पुरुष। शिवारुतैः शिवानां रुतानि शिवारुतानि, तैः। षष्ठी तत्पुरुष। जहासि - हा + लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

टिप्पणी- दिन के प्रथम पहर में शृगाली का शब्द अशुभ माना जाता है।

बोध प्रश्न 1.

बहुविकल्पीय प्रश्न-

क . दुर्योधन ने युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी का किया था।

(क) दुर्योधन (ख) अपहरण

(ग) अपमान (घ) बहिष्कृत

ख. वृकोदर किसे कहा गया है

(क) युधिष्ठिर (ख) अर्जुन

(ग) भीम (घ) सहदेव

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(ग) वनान्तशय्या .... कृताकृती।

(घ) विचित्ररूपा: खलु..................................।

पुरोपनीतं नृप रामणीयकं
द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।
तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं
परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः ।। 39 ।।

अन्वय - नृप ! यत् एतत् (वपुः) पुरा द्विजातिशेषेण अन्धसा रामणीयकम् उपनीतं वन्यफलाशिनः ते तद् वपुः अद्य यशसा समं परं कार्श्यं परैति।

हिन्दी अनुवाद - हे राजन् ! जो यह शरीर पहले ब्राह्मणों के भोजन के अवशिष्ट अन्न से पुष्ट

होकर सुन्दर लगता था, जंगली फल खाने वाले आपका वही शरीर आज यश के साथ-साथ अत्यधिक क्षीण हो रहा है।

व्याख्या- युधिष्ठिर जब राजा थे, तब सर्वप्रथम ब्राह्मणों को भोजन कराते थे, तत्पश्चात् स्वयं भोजन करते थे। उस समय उच्छिष्ट भोजन से भी शरीर पुष्ट था, अतः सुन्दर लगता था। वनवासी युधिष्ठिर वन में सुलभ फल खाने के लिए विवश हैं। पहले स्वेच्छा से उच्छिष्ट भोजन होता था। कोई विवशता नहीं थी, अभाव नहीं था। अतः लोकापवाद की सम्भावना नहीं थी। किन्तु आज विवशता के कारण फलाहार करना पड़ता है। इस फलाहार से शरीर ही नहीं, यश भी नष्ट हो रहा है। अतः लोकापवाद की सम्भावना नहीं थी। किन्तु आज विवशता के कारण फलाहार करना पड़ता है। इस फलाहार से शरीर ही नहीं, यश भी नष्ट हो रहा है। घर में प्रचुर भोज्य सामग्री रहने पर भोजन न करने वाला व्यक्ति उपहास का पात्र नहीं होता, दुर्बल होता हुआ भी अभावग्रस्त नहीं माना जाता। किन्तु वास्तव में अभावग्रस्त व्यक्ति यदि भोजन की अनिच्छा प्रकट करता है, तो उसकी अनिच्छा अविश्वसनीय होगी। यही सामाजिक स्थिति है। द्रौपदी युधिष्ठिर से इसी सामाजिक स्थिति की बात कर रही है। वह कहना चाहती है कि आपके धैर्य और सत्यनिष्ठा की चर्चा तो दूर की बात है, लोग आप के पराक्रम पर भी ऊँगली उठायेंगे। अतः पराक्रम का आश्रय लेकर अपनी कीर्ति की रक्षा कीजिए। यहाँ सहोक्ति अलंकार है।

शब्दरचना- द्विजातिशेषेण - द्वे जाती जन्मनी येषां ते द्विजातयः। बहुव्रीहि। द्विजातीनां शेषं द्विजातिशेषम्, तेन। षष्ठी तत्पुरुष। अन्धसा - अद्यते इति अन्धस्, तेन। अद् + असुन्। रामणीयकम् - रमणीय + वुञ् (अक)। उपनीतम् - उप + नी + क्त। वन्यफलाशिनः वने भवं वन्यं। वन्यम् फलं वन्यफलम्। कर्मधारय। वन्यफलम् अश्नाति इति वन्यफलाशी, तस्य। उपपद। वन्य - वन + यत्। फलाशी - फल +अश् + णिन्। परैति - परा + इ + लट् + प्रथम पुरुष, एकवचन।

अनारतं यौ मणिपीठशायिना-
वरञ्जयद्राजशिरःस्रजां रजः।
निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते
मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम् ।। 40।।

अन्वय- अनारतं मणिपीठशायिनौ यौ चरणौ राजशिरःस्रजां रजः अरञ्जयत् तौ ते चरणौ मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषां वनेषु निषीदतः।

हिन्दी अनुवाद - हे राजन्! सदैव रत्ननिर्मित पादपीठ पर सुखपूर्वक रहने वाले जिन चरणों को राजाओं के शिर की पुष्पमाला की धूलि अलङ्कृत करती रहती थी, आपके वे ही दोनों चरण इस समय हरिणों और ब्राह्मणों द्वारा छिन्न शिखावाले कुंशों के जंगल में पड़े हुए हैं।

व्याख्या- सिंहासनारूढ युधिष्ठिर के चरण रत्ननिर्मित पादपीठ पर रहते थे और देश-देशान्तर के राजा जब उन चरणों पर शिर टेक कर प्रणाम करते थे, तब उन राजाओं के शिर पर स्थित पुष्पमाला के पराग उन चरणों को सुवासित कर देते थे। आज वनवास के समय वे ही चरण कुशों वाली वनभूमि पर पड़े हुए हैं। कहाँ वे सुख के क्षण और कहाँ यह दुःख की वेला! दुःख

की वेला में सुख के क्षणों की स्मृति दुःख को असह्य बना देती है। द्रौपदी युधिष्ठिर के समक्ष इसी स्थिति का वर्णन कर रही है। यहाँ जकार की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार है।

शब्दरचना- अनारतम् - न आरतम् अनारतम् । नञ् तत्पुरुष । मणिपीठशायिनौ - मणिनिर्मितं पीठं मणिपीठम् । शाकपार्थिवादि समास । मणिपीठे शयाते इति मणिपीठशायिनी । उपपद तत्पुरुष। राजशिरःस्रजाम् - राज्ञां शिरांसि राजशिरांसि। षष्ठी तत्पुरुष । राजशिरसां स्रजः राजशिरःस्रजः, तासाम् । षष्ठी तत्पुरुष। अरंजयत् - रंज + णिच् + लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन । मृगद्विजालूनशिखेषु - मृगाश्च द्विजाश्च मृगद्विजाः। द्वन्द्व समास । मृगद्विजैः आलूनाः मृगद्विजालूनाः। तृतीया तत्पुरुष। मृगद्विजालूनाः शिखाः येषां तेषु मृगद्विजालूनशिखेषु । बहुव्रीहि । बर्हिषाम् - बर्हिष् +आम् । षष्ठी बहुवचन । निषीदतः - निः + सद् + लट् लकार, प्रथमपुरुष, द्विवचन।

4.3.4 क्षत्रियोचित्त व्यवहार का वर्णन

द्रोपदी युधिष्ठिर को 'शठे शाठ्यं समाचरेत् ' की भावना को याद दिलाने का प्रयास करती है कि क्षत्रिय हमेशा शत्रु के साथ शत्रुता का व्यवहार करते है, शान्ति की नीति नहीं अपनाते । अतः आप भी क्षत्रियोचित व्यवहार कीजिए।

द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः
समूलमुन्मूलयतीव मे मनः ।
परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां
पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् ।। 41 ।।

अन्वय - यत् इयं दशा द्विषन्निमित्ता ततः मे मनः समूलम् उन्मीलयति इव । परैः अपर्यासितवीर्यसम्पदां मानिनां पराभवोऽपि उत्सवः एव।

हिन्दी अनुवाद - (हे राजन्!) चूँकि यह दशा शत्रुओं के कारण हुई है, इसलिए मेरे मन को समूल उत्पाटित-सा कर रही है। शत्रुओं जिनके पराक्रम को अभिभूत नहीं किया है, ऐसे मनस्वी व्यक्तियों के लिए अपमान भी उत्सव ही होता है।

व्याख्या- द्रौपदी अपनी मानसिक वेदना का कारण स्पष्ट करती हुई वेदना के औचित्य का प्रतिपादन कर रही है और युधिष्ठिर के स्वाभिमान को जागृत करने का प्रयास कर रही है । वह कहती है कि-

चूँकि यह दुखावस्था शत्रुजनित है, इसलिए मेरा मन पूर्ण रूप से क्षुब्ध हो उठा है। यदि यह दुखावस्था भाग्य के कारण होती तो मुझे कष्ट न होता। पुरुषार्थ करने के बाद यदि सफलता न मिले तब भाग्य को कारण माना जा सकता है। किन्तु आपका (युधिष्ठिर का) पुरुषार्थ, आपका पराक्रम अभी अप्रयुक्त है, अतः अपराजित है। शत्रुओं ने आपका तिरस्कार किया है, आपके पराक्रम का नहीं । जिनका पराक्रम अभी थका नहीं है, अर्थात् पराजित नहीं हुआ है, ऐसे स्वाभिमानी लोगों के लिए तिरस्कार भी एक चुनौती है और इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए। जिसके पास पराक्रम है, वही चुनौती स्वीकार कर सकता है। वीर पुरुषों को चुनौती

स्वीकार करने में वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है, जैसा उत्सव में। आपके अप्रतिहत पराक्रम के होते शत्रुकृत यह अपमान मेंरे लिए असह्य हो उठा है।

यहाँ उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास तथा वृत्यनुप्रास अलंकारों की संसृष्टि है।

शब्दरचना- 'यत्' अव्यय है। यम् धातु से क्विप् प्रत्यय। 'गमादीनामिति वक्तव्यम्' वार्तिक से अनुनासिक 'म्' का लोप और 'तुक्' का आगम होकर 'यत्' बनता है। द्विषन्निमित्ता - द्विषन्तः निमित्तं यस्याः सा। बहुव्रीहि। द्विषत् - दिष् + लट् शतृ। 'द्विषोऽमित्रेद्' सूत्र से शतृप्रत्यय। समूलम् - मूलेन सह वर्तमानं समूलम्, तद्यथा स्यात् तथा। अपर्यासितवीर्य सम्पदाम् - न पर्यासिता अपर्यासिता। नञ् तत्पुरुष। वीरस्य भावः कर्म वा वीर्यम्। वीर्यमेव सम्पद् वीर्यसम्पद्। अपर्यासिता वीर्यसम्पद् येषां ते अपर्यासितवीर्यसम्पदः, तेषाम्। बहुव्रीहि। पर्यासिता - परि + अस् + णिच् + क्त + टाप्। वीर्यम् - वीर + यत्। सम्पद् - सम् + पद् + क्विप्। उन्मूलयति - उत् + मूल + णिच् + लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन। पराभवः - परा + भू + अप्।

विहाय शान्तिं नृप धाम तत्पुनः
प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम्।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहा
शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः।। 42।।

अन्वय- नृप! शान्तिं विहाय विद्विषां वधाय तत् धाम पुनः सन्धेहि प्रसीद। निःस्पृहाः मुनयः शत्रून् अवधूय शमेन सिद्धिं व्रजन्ति, भूभृतः न।

हिन्दी अनुवाद- हे राजन! शान्ति का परित्याग करके शत्रुओं के वध के लिए कृपया (अपना) वह तेज धारण कीजिए। संयम द्वारा शत्रुओं को जीतकर मुनिजन सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा नहीं।

व्याख्या- द्रौपदी यहाँ स्पष्ट शब्दों में युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित कर रही है। वह कहती है कि युधिष्ठिर शान्ति का मार्ग छोड़कर क्षत्रियों - चित तेज आश्रय ले। शान्ति का मार्ग मुनियों के लिए है। वे संयम द्वारा, शम द्वारा मनुष्य के छः शत्रुओं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य को नियन्त्रित करके आत्मसाक्षात्काररूप सिद्धि प्राप्त करते हैं। भौतिक कामनाओं से रहित मुनियों के इस मार्ग का अनुसरण भौतिक कामना वाले राजसमुदाय के लिए उचित नहीं है। शान्ति द्वारा न तो शत्रु जीते जा सकते है, न राज्यप्राप्ति - रूप प्रयोजन सिद्ध हो सकता है।

इस श्लोक में 'प्रसीद' शब्द 'कृपया' के लिए प्रयुक्त है अर्थात् यदि युधिष्ठिर शान्ति का परित्याग कर क्षत्रियोचित तेज का आश्रय लेते हैं तो द्रौपदी और अन्य पाण्डवों के ऊपर उनकी कृपा ही होगी। अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

शब्दरचना- शान्तिम् - शम् + क्तिन्, ताम्। विहाय - वि +हा + क्त्वा - ल्यप्। वधाय - हन् + अप् तस्मै। हन् को वध आदेश हो जाता है। सन्धेहि - सम् + धा + लोट् मध्यम पुरुष, एकवचन। निःस्पृहाः - निरस्ता स्पृहा येषां ते। बहुव्रीहि।

4.3.4 शान्ति की नीति की आलोचना

द्रोपदी किसी भी रूप में शान्ति का मार्ग अपनाना नहीं चाहती और न ही युधिष्ठिर के द्वारा ही

चाहती है। वह तो पराक्रमी पुरुष के हाथ में धनुष का अर्थ युद्ध ही जानती है। क्योंकि धनुष धारण करने वाले हमेशा युद्धोचित वार्ता ही करते तथा कभी भी शान्ति की बात नहीं करते आप जैसे योद्धा को भी यह शोभा नहीं देता।

पुरःसरा धामवतां यशोधनाः
सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशम्।
भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रतिं
निराश्रया हन्त! हता मनस्विता ।। 43 ।।

अन्वय- धामवतां पुरःसराः यशोधनाः भवादृशाः सुदुःसहं ईदृशं निकारं प्राप्य रतिम् अधिकुर्वते चेत्, हन्त, निराश्रया मनस्विता हता।

हिन्दी अनुवाद- तेजस्वियों में अग्रणी, कीर्ति को ही धन मानने वाले आप जैसे लोग यदि इस दुःसह अवज्ञा का अनुभव करके सन्तोष कर लें, (तब) बड़े कष्ट की बात है कि आश्रयरहित (होकर) मनस्विता नष्ट हो जाएगी।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर को प्रतीकार के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि आप (युधिष्ठिर) तेजस्वियों में अग्रगण्य हैं। यश ही आप का सर्वस्व है, फिर भी आप अपशब्द-प्रयोग, राज्यापहरण, वनवास आदि के रूप में शत्रुकृत पराभव का अनुभव करके शान्त बैठे हुए हैं। यदि आप जैसा व्यक्ति भी पराभव सह ले, तो इसका अर्थ यह है कि स्वाभिमान नाम का कोई पदार्थ रह ही नहीं गया। क्योंकि स्वाभिमानी के पास ही स्वाभिमान रहेगा या स्वाभिमान के कारण ही कोई स्वाभिमानी कहा जाता है। आपके पास स्वाभिमान नहीं है। इसीलिए आप स्वाभिमानी नहीं रह गये है। किन्तु यदि आप जैसे लोगों के पास भी स्वाभिमान नहीं रहेगा तो उसे और कहाँ आश्रय मिलेगा ? क्या यह समझ लिया जाय कि अब स्वाभिमान का अस्तित्व ही नहीं है।

शब्दरचना- धामवतां - धाम अस्ति एषाम् इति धामवन्तः, तेषाम्। बहुव्रीहि। धामन् + मतुप्, के स्थान कर वतुप्। पुरःसुराः - पुरः सरन्ति इति पुरःसराः, पुरस् +सृ + ट। सुदुःसहम् - अतिशयेन दुःसहं सुदुःसहम्। प्रादि तत्पुरुष। निकारम् - नि + कृ + घञ्, तम्। मनस्विता - प्रशस्तं मनः अस्य अस्ति एषाम् इति मनस्विनः, मनस्विनां भावो मनस्विता। मनस् + विनि मनस्विन्, मनस्विन् + तल् + टाप्।

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम-
श्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं
जटाधरः सज्जुहुधीह पावकम्।। 44 ।।

अन्वय- अथ निरस्तविक्रमः चिराय क्षमाम् एव सुखस्य साधनं पर्येषि (तर्हि) लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं विहाय जटाधरः सन् इह पावकं जुहुधि।

हिन्दी अनुवाद- यदि (आप) पराक्रम का परित्याग कर एकमात्र क्षमा को ही सुख का साधन

मान बैठे हैं, तो राजस्व का बोध कराने वाले (राज चिह्नस्वरूप) इस धनुष् को छोड़कर जटा धारण कर लीजिए और इसी वन में आग में आहुति डालते रहिए।

व्याख्या- द्रौपदी आगे कहती है - यदि आपने क्षमा को ही सुख का साधन मान लिया है और इसीलिए पराक्रम की उपेक्षा कर रहे हैं तो राजचिह्न स्वरूप इस धनुष का भी परित्याग कर दीजिए। वेश क्षत्रिय का और कार्य ऋषि का, यह संगति उचित नहीं। अपना वेश भी बदल दीजिए। जटा धारण कर लीजिए और इसी वन में रहकर आग में हवन करते रहिए। भाव यह है कि आप क्षत्रिय हैं, राजा हैं, तपस्वी नहीं है। अतः आपको क्षत्रियोचित पराक्रम प्रदर्शित करना चाहिए। यहाँ काव्यलिंग अलंकार हैं।

शब्दरचना- निरस्तविक्रमः - निरस्तः विक्रमः येन सः निरस्तविक्रमः। बहुव्रीहि। पर्येषि - परि+इ +लट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन। लक्ष्मीपतिलक्ष्म - लक्ष्म्याः पतिः लक्ष्मीपतिः। षष्ठी तत्पुरुष। तस्य लक्ष्म लक्ष्मीपतिलक्ष्म। षष्ठी तत्पुरुष। जुहुधि - हु + लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते
निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा
विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि ।। 45।।

अन्वय- परेषु निकृतिपरेषु भूरिधाम्नः ते समयपरिरक्षणं न क्षमम्। हि विजयार्थिनः क्षितीशाः अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति।

हिन्दी अनुवाद- (हे राजन्) जब शत्रु अपकार करने में लगे है, तब महान् तेजस्वी आपके लिए शर्त का पालन उचित नहीं है। क्योंकि विजयाकांक्षी राजा शत्रुता की स्थिति में किसी ब्याज से सन्धि में दोष उत्पन्न कर देते हैं।

व्याख्या- द्रौपदी इस श्लोक में गम्भीर राजनीतिक रहस्य का आश्रय लेकर युधिष्ठिर को प्रतीकार के लिए प्रेरित कर रही है। उसका कहना है कि शत्रु तो आपका अपकार करने में लगे हुए हैं और आप द्यूत की शर्त के अनुसार 'तेरह वर्ष' की अवधि की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसा करने से आप दुर्बल और शत्रु प्रबल होंगे। अतः आपके लिए शर्त का अनुपालन उचित नहीं है। नीति भी यही कहती है कि मित्र जब शत्रु बन जाय तो मित्रता की स्थिति में की गई सन्धि को राजा किसी न किसी बहाने से भंग कर देते हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि विजय की आकांक्षा सामर्थ्य पर निर्भर है। सामर्थ्य न होने पर विजय की आकांक्षा का कोई अर्थ नहीं है। सामर्थ्य रहने पर यदि विजय की आकांक्षा है, तब सन्धि को तोड़ना आवश्यक है। सामर्थ्य पर भी यदि विजय की आकांक्षा नहीं है, तो सन्धि को तोड़ना व्यर्थ है। यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

शब्दरचना- निकृतिपरेषु - निकृतिः परं येषां ते निकृतिपराः, तेषु। बहुव्रीहि। भूरिधाम्नः - भूरि धाम यस्य सः भूरिधामा, तस्य। बहुव्रीहि। समयपरिरक्षणम् - समयस्य परिरक्षणम् समयपरिरक्षणम्। षष्ठी तत्पुरुष। सोपधि - उपधीयते इति उपाधिः, तेन सह वर्त्तमानम्। बहुव्रीहि। उपाधिः - उप + धा + कि। सन्धिदूषणानि - सन्धेः दूषणानि, तानि। षष्ठी तत्पुरुष।

टिप्पणी- महाकाव्य के लक्षण के अनुसार यहाँ छन्द बदल दिया गया है। इसके पूर्व पूरे सर्ग में वंशस्य छन्द है। यहाँ पुष्पिताग्रा छन्द है। इसका लक्षण है - अयुजि नयुगरेफतो यकारों युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। प्रथम और तृतीय चरण में क्रमशः दो नगण, एक रगण तथा यगण होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरण में क्रमशः एक नगण, दो जगण, एक रगण तथा अन्त में एक गुरु वर्ण होता है।

विधिसमयनियोगाद्दीप्तिसंहारजिह्मं
शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ।
रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ
दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः ।। 46 ।।

अन्वय- विधिसमयनियोगात् अगाधे आपत्योधौ मग्नं दीप्तिसंहारजिह्मं शिथिलवसुं रिपुतिमिरम् उदस्य उदीयमानं त्वां दिनादौ दिनकृतम् इव लक्ष्मीः भूयः समभ्येतु।

हिन्दी अनुवाद- दैव और काल के प्रभाव से दुस्तर विपत्ति-सागर में पड़े हुए, प्रताप के नष्ट हो जाने से खिन्न, धन-वैभवरहित, शत्रुओं का नाश करके अभ्युदय प्राप्त करने वाले आपको पुनः लक्ष्मी प्राप्त हो, जैसे दैव और काल के प्रभाव से विपत्ति-सदृश समुद्र में डूबे हुए, तेज के नष्ट हो जाने से प्रकाशहीन, नष्ट किरणों वाले शत्रुसदृश अन्धकार को नष्ट करके उदित होते हुए सूर्य को प्रातःकाल लक्ष्मी प्राप्त होती है।

व्याख्या- इस श्लोक में द्रौपदी प्रतापहीन युधिष्ठिर को आश्वस्त करती हुई उनके अभ्युदय की कामना करती है। कवि-प्रसिद्धि है कि सूर्य सायंकाल समुद्र में डूब जाता है और पुनः प्रातःकाल निकलता है। युधिष्ठिर की स्थिति डूबे हुए सूर्य की भाँति है, किन्तु जिस प्रकार सूर्य का उदय अवश्यम्भावी है, उसी तरह युधिष्ठिर का अभ्युदय भी अवश्यम्भावी है। इसीलिए द्रौपदी शुभाशंसा करती है कि जिस प्रकार उदीयमान सूर्य लक्ष्मी सम्पन्न होता है, उसी तरह आप भी लक्ष्मी-सम्पन्न बनें।

यहाँ श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा अलंकार है। मालिनी छन्द है। मालिनी छन्द का लक्षण है- ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः। सर्गान्त होने से यहाँ छन्द परिवर्तित है।

शब्दरचना- विधिसमयनियोगात् - विधिश्च समयश्च इति विधिसमयौ। द्वन्द्व। तयोः नियोगः, विधिसमयनियोगः, तस्मात्। षष्ठी तत्पुरुष। अगाधे - न गाधः अगाधः, तस्मिन्। नञ् तत्पुरुष। दिनस्य आदिः दिनादिः, तस्मिन्। षष्ठी तत्पुरुष। दिनं करोति इति दिनकृत्, तम्। उपपद तत्पुरुष। दिन + कृ + क्विप्।

बोध प्रश्न .2

बहुविकल्पीय प्रश्न-

क. क्षत्रियोचित व्यवहार का वर्णन किस श्लोक में किया गया है

(क) 40 (ख) 41

(ग) 43 (घ) 44

ख. अन्तिम छन्द के रुप में प्रयोग किया गया है।

(क) पुष्पिताग्रा (ख) मालिनी

(ग) मन्द्राक्रान्ता (घ) शिखरिणी

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(ग) सर्ग की समाप्ति में.................................. शब्द का प्रयोग किया गया है।

(घ) समूल मुन्मूलयतीव में मनः में .... अलंकार है।

नीचे के वाक्यों के समक्ष सही (√) तथा गलत वाक्यों के सामने गलत (x) का निशान लगाये-

(ङ) संयम के द्वारा शत्रुओं को जीतकर राजा सिद्धि प्राप्त करते है। ( )

(च) राजा, शत्रुता की स्थिति में किसी व्याज से सन्धि में दोष उत्पन्न कर देते है। ( )

4.5 सारांश

राजा कितना भी प्रजा के प्रति अव्यवहार प्रकट करे किन्तु अपने प्रिया रूपी राजलक्ष्मी को अपहृत होते नहीं देख सकता। जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता उसकी अधीनता लोग स्वयं स्वीकार कर लेते है किन्तु जो क्रोध करना जानता ही नहीं उसे न तो स्वजनों का आदर मिलता है, न कोई शत्रु उससे भयभीत होता है। इस प्रकार के अनेक स्वरूपों का चित्रण करते हुए द्रोपदी अपने पति युधिष्ठिर को शान्ति का मार्ग छोड़कर युद्ध के लिये तैयार करने का प्रयास कर रही है। जिसका सजीव चित्रण भारवि ने प्रस्तुत किया है। एक राजा को अपने कर्तव्यों का जिस रूप में निर्वहण करना चाहिए कवि ने इसका प्रदर्शन बड़ी कुशलता से प्रदर्शित किया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप द्रोपदी के कथनों से अवगत हो सकेंगे ,जिसकी सहायता से द्रोपदी युधिष्ठिर को युद्ध का मार्ग, शान्ति के मार्ग को छोड़कर अपनाने के लिये कहती है। इस प्रकार आप कवि के कवित्व से भी परिचित हो सकेंगे।

4.6 शब्दावलियॉ

1. कुलाभिमानी - अपने कुल पर अभिमान करने वाला
2. गर्हित - निंदित
3. वल्कवासांसि - वल्कल वस्त्र
4. वनान्तशय्याकठिनी कृताकृती - वन भूमि पर सोने से कठिन शरीर वाले
5. निराश्रया - आश्रय रहित

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1.

क. ख

ख. ग

ग. कठिनी

घ. चित्त वृत्तय :

ङ. सही

बोध प्रश्न 2.

क. ख ख. ख ग. लक्ष्मी घ. उत्प्रेक्षा ङ.सही च. सही

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारवि - किरातार्जुनीयम्

2. वामन शिवराम आप्टे - संस्कृत - हिन्दी शब्दकोश।

4.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें

1. काव्य प्रकाश - आचार्य लस्मत।

2. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ।

3. छन्दोलंकार मंजरी - डा0 बाके लाल मिश्र।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्रोपदी के कथनों की समीक्षा कीजिए।
2. भारवि के विषय-विवेचना पर प्रकाश डालिए।

इकाई 5. प्रथम सर्ग के महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

पद्य काव्य किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग के अध्ययन से संबंधित यह पॉचवी इकाई है । इसके पूर्व की इकाईयों में आपने किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग का ही अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में प्रथम सर्ग में आयी हुई महत्वपूर्ण सूक्त्यिों की व्याख्या आप के अध्ययनार्थ प्रस्तुत की गई है।

वनेचर से भारवि ने जितनी भी बातें कहलवायी, या फिर द्रौपदी द्वारा युधिष्ठिर के प्रति कथन, सभी शब्द अपनी अर्थ गम्भीरता से पूर्ण पुष्ट है। भारवि ने अपने शब्दों से जो चाहा है बड़ी ही कुशलता से स्पष्ट रूप में प्रस्तुत कराया है । प्रथम सर्ग में कुल 12 सूक्तियाँ हैं और बारहों सूक्तियों में जो स्वरूप और व्यक्तित्व का चित्रण भारवि ने किया है वही उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकाशित करने के लिए पूर्णतया सामर्थवान है। भारवि का ग्रन्थ केवल उस कथा को ही नहीं, अपितु तत्कालीन समाज के स्वरूप को भी प्रस्तुत करने में सहायक रहा है। कवि अपनी काव्य - कौशल को भले तत्कालीन से अलग रखकर क्यों न प्रस्तुत करने का प्रयास किया हो परन्तु कहीं न कहीं उसकी छटा द्रष्टव्य जरूर हो जाती है, और भारवि भी इस रूप से नहीं बच पाये हैं।

अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रथम सर्ग में प्रयुक्त संवादों में आयी हुई विभिन्न सूक्तियों के महत्व से परिचित होकर उनकी सम्यक् व्याख्या कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप -

- प्रथम सर्ग में वनेचर तथा द्रौपदी के द्वारा कहे गये वक्तव्यों को बता सकेगें।
- बलवानों से विरोध का परिणाम दु:खद होता है इसे बता सकेंगे।
- विवेक से रहित पराजय पाता है इस तथ्य की पुष्टि कर सकेंगे।
- जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता वह विपत्तियों को भी नष्ट कर देता है, इस सूक्ति की सम्यक् व्याख्या बता सकेंगे।

5.3 वनेचर एवं द्रोपदी की उक्तियाँ

5.3.1 वनेचर की उक्ति

जुए में दूसरी बार पराजित होकर शर्तो के अनुसार युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा द्रौपदी के साथ द्वैतवन में निवास करने लगे । वहाँ निवास करते हुए उन्होंने एक चतुर वनवासी किरात को दुर्योधन की प्रजा के प्रति नीति को जानने के लिए गुप्तचर बना कर भेजा । ब्रह्मचारी वेशधारी वनेचर दुर्योधन के राज्य का सभी वृत्तान्त जानकर युधिष्ठिर के पास लौटकर आया । उसने महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया और एकान्त में उनका आदेश पाकर शब्दसौष्ठव और

अर्थगाम्भीर्य से युक्त वचन कहने लगा ‘ हे महाराज, कार्य में लगाये गये सेवकों का यह कर्त्तव्य है कि वे स्वामियों को धोखा न दें, क्योंकि स्वामी लोग सेवकों के माध्यम से ही सभी कुछ जानते हैं, अतः मेरे कथन में यदि कुछ अप्रिय बात हो तो उसे क्षमा करेंगे, क्योंकि हितकारी और मनोहर वचन दुर्लभ होते हैं, जो मंत्री राजा को उचित उपदेश नहीं देता,वह कुत्सित होता है और जो जो राजा हितैषी मन्त्री की बात नहीं सुनता वह राजा ,राजा नहीं होता। मंत्रियों और राजाओं में परस्पर अनुकूलता होने पर ही राज्य की समृद्धि होती है। राजाओ का चरित्र दुर्बोध होता हैं, मेरे जैसा मंदबुद्धि व्यक्ति उसे भला कैसे जाने सकता है? फिर भी शत्रुओं के गुप्त रहस्यों का जो कुछ भेद मैं पा सका, वह आपका ही प्रभाव है। सिहांसन पर आसीन होकर भी दुर्योधन आपसे भयभीत है और पराजय की आशंका करता है, अतः कपट से जीते गए राज्य को उत्तम नीति का आचरण कर अपने वश में करने के लिए प्रयत्नशील है। कुटिल होते हुए भी वह गुणों का अर्जन करके अपनी कीर्ति का विस्तार कर रहा है। काम क्रोधादि मानसिक विकारों को जीत कर वह मनु द्वारा प्रतिपादित राजधर्म के मार्ग पर चलने का प्रयत्न कर रहा है और दिन तथा रात्रि विभाजन कर, आलस्य त्याग कर अपने प्रभाव को बढ़ा रहा है। सेवकों के साथ मित्रों की तरह, मित्रों के साथ संबंधियों की तरह एवं संबंधियों के साथ आत्मीयों की तरह व्यवहार कर राज्य के सभी वर्ग को सम्मान देता है, सभी में संतोष है। धर्म, अर्थ और काम का समान रूप से सेवन करता है और ये सभी दिन-दूने रात चौगुने से प्रयोग करता है। मुधर वचन से लोगों को अपने वश में करने के लिए दान देता है; दान के साथ यथोचित सत्कार करता है। विशेष रूप से सत्कार भी गुणों के आधार पर ही करता है।

न्यायपालन में भी वह निष्पक्ष है और केवल कर्तव्य - पालन की भावना से अपराध करने पर शत्रु को और पुत्र को भी दण्ड देने में नहीं हिचकता। धन के लाभ या क्रोध के वशीभूत होकर ही किसी को दण्ड नहीं देता। शत्रुओ में भेद डालने में चतुर स्वजनों को रक्षक नियुक्त कर उनके ऊपर शंका करता हुआ भी वह शंकारहित सा आचरण करता है, सेवक जब उसका कार्य पूरा कर देते है, तो उन्हें प्रचुर धन देकर अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करता है। सभी उपायों का दुर्योधन ने सुंदर ढंग से विनियोग किया है और वे सुंदर परिणाम उत्पन्न कर रहे है, उसकी समृद्धि का भविष्य उज्ज्वल बना रहे हैं। धनसम्पति उसके पास इतनी प्रचुर है कि उसके सम्भाव का आंगन घोड़ों और रथों से खचाखच भरा है तथा कर देने वाले राजाओं द्वारा उपहार में दिये गये हाथियों के मदस्राव से गीला हो गया है। कृषकवर्ग भी खुशहाल और बिना परिश्रम के ही नदियों से सिचांई करके फसल पा रहे हैं। किसी के ऊपर आश्रित नहीं क्योंकि दुर्योधन उनकी भलाई करने में तत्पर है। पृथ्वी उसके गुणों के कारण एक दुधारू गाय की तरह अनेक प्रकार के धन उत्पन्न कर रही है। उसके सैनिक भी अनुकूल हैं। वीर, यशस्वी, धनुर्धारी योद्धा बिना किसी गुटबंदी और पारस्परिक विरोध के उसका प्रिय कार्य करने में प्राणों की बाजी लगाकर जुटे हुए हैं। स्वामिभक्त दूतों के द्वारा वह अपने अधीन राजाओं की सभी बातों को जान लेता है। उसकी योजनाएं इतनी गोपनीय रहती हैं कि कार्य हो जाने के बाद ही पता चलता है कि दुर्योधन क्या चाहता था। सभी राजा उनके मित्र हो गए हैं। उसे धनुष उठाने की या क्रोध से भौंह टेढ़ी करने

की भी आवश्यकता नहीं है। राजागण उसकी आज्ञा को फूलों की माला की तरह शिरोधार्य करते हैं। इन सबके अलावा वह धर्म कर्म में भी लगा हुआ है। अपने अनुज नवयुवक दुःशासन को युवराज बनाकर पुरोहित के आदेश से यज्ञ भी कर रहा है किन्तु इन सबके बावजूद निष्कण्टक पृथ्वी का शासक होकर भी आपसे पराजय की आशंका करके वह भयभीत है। इसका प्रमाण यह है कि यदि सभा मे वार्तालाप में आपका नाम ले लेता है, तो अर्जुन के अतुल पराक्रम का ध्यान कर वह दुःखी हो जाता है और अपना सिर लटका लेता है। वह आपके साथ कुटिलता करने में तत्पर है, अतः आप उसका प्रतीकार कीजिए।

इस प्रकार कहकर और युधिष्ठिर से पुरस्कार आदि के रूप में सत्कार प्राप्त कर वनेचर चला गया। युधिष्ठिर ने भी महल में प्रवेश करके द्रौपदी एवं भाइयों के सामने वनेचर द्वारा बताया गया सारा वृत्तान्त कह सुनाया। शत्रुओं की समृद्धि का समाचार सुनकर द्रौपदी अपने मनोवेग को रोक न सकी और युधिष्ठिर के क्रोध को भड़का कर शत्रु से बदला लेने के लिए प्रेरित करती हुई कहने लगी-

5.3.2 द्रौपदी की उक्ति

हे राजन्! आप जैसे विज्ञ लोगों के प्रति स्त्री का कुछ कहना तिरस्कार के समान है, फिर भी मेरे मन की व्यथाएं मुझे नारी के उचित व्यवहार को भूलकर कुछ कहने पर बाध्य कर रहीं है। अपने इन्द्रतुल्य पराक्रमी पूर्वजों द्वारा चिरकाल तक अधीन की गई पृथ्वी को तुमने वैसे ही त्याग दिया है, जैसे मदस्त्रावयुक्त हाथी माला को फेक देता है। जो लोग छल करनेवालों के प्रति छल नहीं करते, वे धूर्तों का शिकार बन जाते है। धूर्त उनके रहस्यों का भेद लेकर उन्हें नष्ट कर देते हैं। गुणों से अनुरक्त अपने कुल में उत्पन्न अपनी वधू जैसी राजलक्ष्मी का शत्रुओ के द्वारा अपहरण करानेवाला आपके सिवा भला और कौन होगा ? आप इस मानिजनों द्वारा निन्दित मार्ग में चल रहे हैं, आपके क्रोध की अग्नि अब भी क्यों नहीं भड़कती? जिस व्यक्ति का क्रोध खाली नहीं जाता, उसके अधीन सभी हो जाते हैं। जिसमें क्रोध नहीं, उसकी मित्रता या शौक से लालचन्दन लगाते थे, अब वे ही धूल-धूसरित होकर पर्वत में इधर-उधर भटकते हैं। इन्हें देखकर आपके मन में दुःख नहीं होता क्या? जिस धनंजय ने उत्तर कुरू देश को जीतकर सोने चांदी की महान राशि लाकर दी थी, उसे अब वल्कल वस्त्र ढोते देखकर भी आपको शत्रु पर क्रोध नहीं आता? वन की भूमि पर सोने से जिनके शरीर कठोर हो गये है और बाल बढ़ गये है, ऐसे में दोनो जुड़वाँ भाईयों-नकुल-सहदेव को देखकर भी आप धैर्य और संयम को छोड़ने का साहस भला क्यों नहीं करते? मैं तुम्हारी इस बुद्धि को नहीं समझ पा रही हूँ। सचमुच लोगों की मनोवृतियां अजीब होती हैं। मैं जितना ही आपकी इस घोर विपत्ति के बारे में सोचती हॅू, मेरा हृदय उतना ही बलात् विदीर्ण होता है। आप अपनी हालत तो देखिए; जो पहले बहुमूल्य पलंग पर सोने के बाद बन्दियों के स्तुति और मंगल गीतों को सुनकर जागते थे। वहीं अब कुश-कण्टक वाली भूमि पर सियारिनियों के अशुभ शब्द सुनकर निद्रा छोड़ते हैं। आपका यह शरीर जो पहले ब्राह्मणों को खिलाने के बाद बचे हुए अन्न खाने से पुष्ट और सुन्दर दिखाई पड़ता था, वही अब जंगली फल-मूल खाने से दुबला होता जा रहा है। ये चरण जो पहले मणिपीठ पर रहते थे और प्रणाम करने वाले राजाओं

के सिर की मालाओं के पराग रंजित होते थे, वे ही अब कटे हुए कुशों के बीच रहते हैं, यह हालत शत्रुओं ने कर रखी है, इसी कारण मेरा मानों समूल उखड़ जा रहा है। शत्रु द्वारा पराजय भी मानी लोगों को बुरी नहीं लगती। राजन्! अब शान्ति छोड़िए। क्षत्रियों के तेज को धारण कीजिए। शान्ति का अवलम्बन करके निष्काम मुनि लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा लोग नहीं। आप जैसे तेजस्वियों में अग्रणी व्यक्ति यदि इस प्रकार का अपमान सहकर संतोष करके बैठ जाये, तो इस संसार से मनस्विता समाप्त हो चुकी। यदि क्षमा और शान्ति को ही हमेशा के लिए सुख का साधन मानते हो, तो धनुष फेंककर जटाएं धारण कर लो और यहां वन में बैठकर अग्नि में आहुति करो। शत्रु अपकार करने में लगा है, इसलिए तुम्हें अत्यंत तेजस्वी होते हुए, समय की प्रतीक्षा करने और शर्त का पालन करने की आवश्यकता नहीं। विजय चाहनेवाले राजा किसी बहाने संधि को तोड़कर शत्रु से बदला लेते हैं। दैव और समय के नियम से आपत्ति के समुद्र में पड़े हुए धन और साधनहीन होने के बाद उन्नति के लिए प्रयत्न करते हुए आपको राजलक्ष्मी उसी प्रकार प्राप्त होवे, जैसे रात्रि के अंधकार से निकलते हुए सूर्य को तेज मिलता है।

5.4 भारवेऽर्थगौरवम् की व्याख्या

संस्कृत के आलोचना जगत में भारवि अपने अर्थ गौरव के निमित नितान्त प्रख्यात है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थो की अभिव्यक्ति को हम अर्थगौरव की कसौटी मानते है। अपने अभिव्यंजनीय भावों के प्रकटीकरण के लिए कवि उतने ही शब्दों को चुनता है जितने उस कार्य के लिए आवश्यक होते हैं। भारवि का अर्थ गौरव उनकी गंभीर अभिव्यंजना शैली का फल है और इस शैली में शब्द तथा अर्थ दोनों के सुडौलपन की स्निग्धता है। भारवि गंभीर व्यक्तित्व से पण्डित महाकवि है। उनकी कविता में भावों की उदारता है। मानव हृदय के भीतर प्रवेश कर उसके अंतराल में पनपने वाले भावों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उनके प्रकटीकरण की महनीय शक्ति का अभाव उसकी काव्यकला में भले ही विद्यमान हो परन्तु लोक संबंध तथ्यों के विवरण देने में वे सर्वथा कृतकार्य हैं।

अर्थ - गौरव की कमनीयता का उदय श्लेषालंकार के अभ्युदय के कारण अनेक स्थलों पर दृष्टि गोचर होता है। श्लेषानुप्राणिता उपमा को प्रदर्शकारी यह प्रख्यात पद्य अर्थगौरव का चमत्कारी दृष्टान्त प्रस्तुत करता है:-

कथा प्रसंगेन जनैरूदाहृतादनुस्मृता खण्डलसुनुविक्रमः।
तवाभिधानाद्व्यथते नताननः सुदुः सहान्मंत्रपदादिवोरगः॥

जिस प्रकार सॉप विषवैध के द्वारा उच्चरित गरूड़ और वासुकी के नामों से युक्त अत एव असह्य मंत्र पद से गरूड़ के पराक्रम का स्मरण कर नतमस्तक हो जाता है उसी प्रकार जनसमूह में चर्चा के अवसर पर दुर्योधन आप का (युधिष्ठर का) नाम सुनकर इन्द्रपुत्र अर्जुन के पराक्रम का स्मरण कर अपना सिर (लज्जा और सन्ताप के कारण) झुका लेता है। इस पद्य के कतिपय 12 श्लिष्ट पद अर्थ गौरव की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं - (1) तवाधिनात् तुम्हारे नाम से; त (ताक्ष्र्य, गुरूड़) तथा व (वासुकी) के नाम धारण करने वाला एकदेश के ग्रहण से पूरे नाम का ग्रहण होता है। इस

न्याय से 'तव' शब्द तार्क्ष्य तथा वासुकि का वाचक माना गया है।

(2) आखण्डलसुनुविक्रमः-इन्द्र के सुनु (पुत्र-अर्जुन) के विक्रम (पराक्रम) का स्मरण करने वाला; इन्द्र के सुनू (अनुज- विष्णु)के वि (पक्षी-गरूड़) के क्रम (पादविक्षेप) का स्मरण करने वाली। फलतः सभंगश्लेष की महिमा से संपन्न होने के कारण कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थो का समावेश इस पद को सौष्ठव प्रदान कर रहा है।

विषमोपि विगाह्यते नयःकृततीर्थ पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृतवर्त्म यः ।।

जिस प्रकार विषम-गंभीर जलाशय सीढ़ी बना देने पर स्नान के योग्य वन जाता है उसी प्रकार समस्याओं की विकटता के कारण विषम नीतिशास्त्र योग्य विद्वान द्वारा व्याख्यात होने पर सुगमता से प्रवेश किया जा सकता है। इतना होने पर भी वह व्यक्ति विशेष दुर्लभ का प्रतिपादन सुलभ है। परन्तु पदनुसार व्यवहार का प्रतिपादन दुष्कर है।

परिणामसुखे गरीयसि व्यथ केऽस्मिन वचसि क्षतेजसाम्।
अतिवीर्यवतीव भेषजे वहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः ।।

परिणाम में लाभपद्र, श्रेष्ठ क्षोणवल वाले रोगियों को (पाचन शक्ति का च्युनता के कारण) कष्ट प्रद, अत्यंत वीर्य से संपन्न अल्पमात्रा वाले रसायन में जिस प्रकार अनेक गुण दिखते है, उसी प्रकार परिणाम में हितकर सारगर्भित, क्षीणशक्ति वाले व्यक्तियों को सन्तापकारी, ओजस्वी एवं अल्पाक्षर द्रोपदी के वचन में अनेक (मर्यादारक्षण, राज्यलाभादि) गुण पाये जाते हैं। रसायन के गुण का प्रतिपादक यह गंभीरार्थक पक्ष नितान्त विशद तथा अंतरंग है।

सखीनिव प्रीतिपुजोऽनुजीविनः समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु वन्धुताम्।।

अहंकार रहित वह सदा भृत्यों को प्रेमी मित्रों की भांति कुटुम्बियों की तरह आदरयुक्त और कुटुम्बीवर्ग को (अपने) स्वामी की भांति (लोगों को) दिखलाता है।

कृत प्रणामस्य महीं महीभुजे जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं प्रवक्तु मिछन्ति मृषा हितैषिणः।।

प्रणाम किए हुए जुए में शत्रु के द्वारा जीती गई पृथ्वी का वृतान्त राजा से कहते हुए उनका मन व्यथित नहीं हुआ । क्योंकि हिताकांक्षी व्यक्ति असत्य प्रिय वचन कहना नहीं चाहते।।

भारवि की शास्त्रगत व्युत्पत्ति के अतिरिक्त लोकानुभव का प्रकृष्ठ परिचय उनकी सुक्तियों में प्राप्त होता है। उनके सुभाषित शास्त्रों के पाण्डित्य से मण्डित तथा व्यापक अनुभूतियों से समन्वित है उनमें नीति, राजनीति तथा सामान्य जीवन से संबद्ध सूक्तियों का भंडारगार है। इन सभी में 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार निहित है। इन्ही सूक्तियों में अर्थ गौरव की महत्ता अंकित करके सहृदय समीक्षकों ने यह उक्ति प्रचलित कर दी है - भारवेरर्थ गौरवम्। यहां कुछ सामान्य सूक्तियों के उदाहरण दिये जा रहे है -

(1) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः (1/4) ऐसी वाणी दुर्लभ है जो हितकर होने के साथ मन के

अनुकूलन भी हो।

(2) समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद वरं विरोधोअपि समं महात्माभिः (1/8) नीचों की संगति की अपेक्षा बड़े लोगों से विरोध कहीं अच्छा है। क्योंकि उनसें ऐश्वर्य की सिद्धि होती है।

(3) अहो दुरन्ता वलवद्विरोधिताः (1/23) बलवान व्यक्तियों से विरोध करने पर अन्त तो कष्टकर होगा ही।

(4) वसन्ति ही प्रेम्णि गुणानवस्तुनि (8/37) प्रेम में गुण वसते हैं। किसी भी भौतिक पदार्थ में नहीं।

(5) अपातटम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (11/12) इन्द्रियों के विषयों को तो अपनी प्राप्ति के ही समय अच्छे लगते हैं। आन्तिभावस्थाप में वे सन्तापही देते है।

(6) सुलभा रम्यता लोके दुर्लभ ही गुणाजर्नम् (11/11) संसार में सौन्दर्य की प्राप्ति कठिन नहीं है। किन्तु गुणों की प्राप्ति बहुत कठिन है।

(7) सहसा विदधीत न क्रियाम् (2/30) विना विचारे आर्थात् अकस्मात् कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

(8) आविज्ञातेऽपि बन्धव ही बलात्प्रह्लादते मन०(11/8) अपने बान्धव को कोई न भी पहचान पाये तथापि उसे देखकर मन में प्रबल हर्षोद्रेक होता ही है।

(9) दूरधिगमा ही गति व प्रयोजनानाम् (10/40) किसी उद्देश्य का अन्तिम परिणाम क्या होगा यह जानना कठिन है ।।

(10) आत्मवर्गाहितमिच्छति सर्वः (8/64) सभी लोग अपने वर्गका हित चाहते हैं।

(11) यथोतरेक्षा ही गुणेषु कामिनः (8/4) कामी जन सदा गुणों की क्रमशः अधिकता की खोज करते रहते है।

(12) मात्सर्यरागोपहतात्मनां ही स्खलन्ति साधुश्वपि मानसानि (3/53) ईर्ष्या-ग्रस्त व्यक्तियों के चित्त सज्जनों के प्रति द्वेषयुक्त ही रहते हैं।

(13) वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः (9/16) सभी लोग निरापद स्थान पर रहना चाहते है।

भारवि राजनीति के विशिष्ट ज्ञाता है । इसलिये तद्विषयक सूक्तियाँ भी उन्होंने अनेकानेक दिये है जैसे -

(1) प्रकर्षतन्या ही रणे जय श्रीः (3/17) युद्ध में विजय की प्राप्ति पराक्रम ही आश्रित होती है।

(2) **तेजोविहीन विधहाति दर्पः** (17/16) निस्तेज व्यक्ति के पास स्वाभिमान कहॉं से होगा।

(3) अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन विद्विषादरः (1/33) क्रोध शून्य व्यक्तिका न मित्रही आदर करता है न शत्रु ही डरता है।

(4) ब्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवं भवन्ति मायाविषुयेनमायिन: (1/30) वे मूर्ख अवश्य ही पराजय पाते है जो मायावियों के प्रति माया का प्रयोग नहीं करते।

(5) प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्य समुन्नतिं यथा (2/21) वड़े राजाओं का यह स्वभाव है जिसके कारण वे दूसरे के अभ्युदय को सह नहीं पाते।

किरातर्जुनीयम् के द्वितीय सर्ग में नीति से पूर्ण अनेक पद्य है जैसे-ननु वक्तृ विषेशानिः

स्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः (2/5) अर्थात् विद्वान् लोग किसी के वाणी के गुणों का ग्रहण करते है वे यह नहीं देखते कि यह किस वक्ता की वाणी है (सभी की बात है या पुरुश की) अर्थ गौरव से सम्पन्न यह पद्य बहुधा उधृत किया जाता है-

असक्त माराधयतो यथायथं विभज्य भक्तया समपक्षपातया।
गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान् न वाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्।

निःसदेह विचारों एवं भाषा की स्फूर्ति एवं उच्चकोटि की अभिव्यक्ति में भारवि को अनूठी सफलता मिली है। भले ही कल्पना का वैभव, कोमलता, भावुकता एवं गीतिकाव्य की मधुरता में महाकवि कालिदास भारवि से बहुत आगे है। परन्तु अपने बाद के कलावादी कवियों माघ या श्री हर्ष की तुलना में भारवि अनेक दृष्टियों से अधिक प्रशंसा के पात्र है। पण्डितों में यह उक्ति है कि भारवि से माघ बढ़कर कर है तथा माघ ने भारवि के प्रभाव को कम करने के लिए अपने काव्य की रचना की थी।

तावद् भा भारवेभाति यावन्माद्य।
उदिते च पुनर्माधे भारवेरभा रवेरिव ।।

किन्तु माघ के काव्य में अस्वाभाविकता, शुष्कता, कृत्रिमता और अधिक बढ़ गयी है। उन्होंने भारवि का ही अनुकरण किया है। कालिदास के बाद भारवि दूसरे स्थान के उच्च अधिकारी हैं इसमें संदेह नहीं। थोड़े शब्दों में भाव का अनन्त सागर भर देते हैं-अर्थात् गागर में सागर भरना उन्हें आता है भारवि की इन्हीं गुणों की प्रशंसा करते हुए कृष्णकवि ने लिखा है कि -

प्रदेषतृत्यापि महान्तमर्थ प्रदर्शयन्त्री रसमादधान ।
साः भारवेः सत्यथदेपिकेव रम्याः कृतिः कैरिवनोपजीव्य ।।

अर्थात् रसभाव से भरपूर सत्यर्थ को प्रकाशित करने वाली दीपिका के समान भारवि की वाणी किसके लिये उपजीव्य नहीं है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति उससे मार्ग दर्शन कर सकता है।

उनकी इसी विशेषता को मल्लिनाथ के 'नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः' कह कर व्यक्त किया है। डॉ॰ भोलाशंकर व्यास ने यहाँ तक कहा है कि-''कालिदास की कविता में द्राक्षीपाक है, अँगूर के दाने की तरह मुँह में रखते ही रस की पिचकारी फूट पड़ती है। जबकी भारवि के काव्य में नारिकेलपाक है जहाँ नारियल को तोड़ने की सख्त मेहनत के बाद उसका रस हाथ आता है और कभी - कभी तो उसे तोड़ने की सख्त मेहनत के बाद इधर-उधर जमीन पर वह चला जाता है और उसमें बहुत थोड़ा वचा - खुचा सहृदय की रसना का आस्वाद्य बनता है।

निष्कर्ष यह है कि भारवि की प्रमुखता वर्णनात्मक तथा तार्किक प्रसंगों में विशेष है। लयसमन्वित गीति-काव्योचित माधुर्य का उनमें अभाव है। वे हिमालय के वर्णन में तथा राजनीतिक समस्याओं, तार्किक समस्याओं के समाधान में जितनें समर्थ हैं, उतने किसी कोमल भावों की अभिव्यजना में नहीं। अलंकृत पदावली का विन्यास भारवि का निजी क्षेत्र है-असंशय तथा चमत्कारी वैशिष्ट्य।

5.5 प्रथम सर्ग के महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या

5.5.1 वनेचर द्वारा कथित सूक्तियाँ

न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ।2 ।

अन्वयः-हि हितैषिणः मृषा प्रियं प्रवक्तुं न इच्छंति ।

शब्दार्थः- हि - क्योंकि, हितैषिणः = हित चाहने, मृषा = मिथ्या असत्य, प्रियं-प्रिय, प्रवक्तुं-कहने के लिये न इच्छन्ति नहीं चाहते ।

हिन्दी अनुवाद - क्योंकि हितैषी लोग असत्य प्रिय बात नहीं कहना चाहते हैं ।

व्याख्या - युधिष्ठिर के पास पहुँच कर उसे ब्रह्मचारी वेशधारी वनेचर ने में राजा को प्रणाम करने बाद अपने चित्त को बिना बिचलित किए सत्य कथन कहना प्रारम्भ किया क्योंकि राजा के समक्ष गुप्तचर का कर्तव्य होता है कि सत्य भाषण ही करे भले ही वह असत्य क्यों नहीं। सत्य बात कुछ क्षण के लिए मन को व्यथित कर सकती है परन्तु भविष्य में उठाये गये कदम उस पर आश्रित होकर ही उठेगें। औषधी कड़वी होती है किन्तु स्वास्थ-प्रद होती है । उसी प्रकार हितैषी लोग हमेशा ही सत्य वार्ता ही प्रस्तुत करते है। असत्य और प्रिय बालेने वाले हितैषी नहीं कहे जा सकते क्योंकि वह असत्य और प्रिय वाणी भविष्य के लिए दुःख देने वाला ही होगा। इसलिए असत्य और प्रिय भाषण देने वाले लोग किसी का हित नहीं कर सकते। वनेचर भी इस बात से भली भांति परिचित है इसलिए वह अपने राजा युधिष्ठिर को सत्य से ही अवगत कराना चाहता है जिससे कि युधिष्ठिर उस वार्ता को सुनकर सही नीति के साथ अपने कर्तव्य के लिए उद्धृत हो सके ।

2- हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

अन्वय - हितं मनोहारि च वचः दुर्लभम् ।

शब्दार्थः- हितं = कल्याणकारी, मनोहारी, च = और प्रिय, वचः = वचन, दुर्लभम् = दुष्यप्राप्य होते है ।

हिन्दी अनुवाद- हित कर और मधुर (प्रिय लगने वाले) वचन दुलर्भ होते हैं ।

व्याख्या- राजभवनों में रहने वाले राजा लोग राष्ट्र का सम्पूर्ण हाल जानने में स्वयं असमर्थ है, वे अपने गुप्तचरों के द्वारा ही सब वृतान्त देखते या जानते है। अतः राजाओं के नेत्र गुप्तचर ही है । गुप्तचरों के द्वारा असत्य सूचना देने पर राजाओं का अन्धों की तरह विनिपात निश्चित है इसलिए राजा को ठीक-ठीक सूचना आकर देना सेवकों का कर्तव्य हैं राजा का भी कर्तव्य है कि वह सेवकों की निन्दा न करते हुए सेवकों द्वारा कहे गये वृतान्तों को ध्यान से सुने। सेवक द्वारा कहा गया वृतान्त अप्रिय भी हो सकता है । ऐसे में राजा को हितकारी और प्रिय वाणी के लिए कभी चिन्तित नही होना चाहिए । ये दोनों विपरीतार्थ और दोनों को एकत्र करना भी कठिन है । तथा कवि द्वारा कही गयी यह सूक्ति पूर्णतः नीतिपरक है कि हितकर और प्रिय वचन दुर्लभ होते हैं ।

3 - स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः सश्रृणुते स किं प्रभुः।

अन्वय:- यः अधिपं साधु न शास्ति सः किंसखा। यः हितात् न संश्रृणुते सः किं प्रभुः।

शब्दार्थः- य: - जो (मित्र, सचिव) , अधिपं = राजा को , साधु - उचित , नशास्ति -उपदेश नहीं देता है , स- वह, किंसखा = निकृष्ट मित्र होता है , कुत्सित मित्र है। यः = जो (स्वामी, राजा) हितात् = हितैषी व्यक्ति से (निर्दिष्टतथ्य को), न संश्रृणुते - नहीं सुनता है, सः = वह किंप्रभुः = कुत्सित स्वामी है, बुरा स्वामी है।

हिन्दी अनुवादः-जो (परामर्श देने वाला) स्वामी को उचित परामर्श नहीं देता वह कुमित्र (बुरा मित्र) है जो (स्वामी) हितैषी से (हितवचन) नहीं सुनता वह निन्दनीय स्वामी है।

व्याख्या - परामर्श दाता मन्त्री तथा राजा की परस्पर विश्वसनीयता ही समृद्धि का कारण है-इस राजनीतिक तथा लोकोपयोगी तथ्य का निरूपण इस सूक्ति में किया गया है। प्राणों पर आपत्ति आने पर भी अपने स्वामी के हित की बात कहना मित्र बने हुए अमात्य आदि का परम धर्म है और इस प्रकार के हितैषी अमात्यादि से उपदेश की बात सुनना राजा लोगों का भी परम कर्तव्य है। ऐसा होने पर ही राजा और मन्त्रियों में ऐकमत्य सम्भव है। तथा राज्य सम्पत्ति भी इनके अनुकूल होने पर ही वहाँ निवास करती है। जहाँ ये दोनों परस्पर विरोध उत्पन्न करते है वहाँ राजलक्ष्मी स्वयं नष्ट हो जाती है। अतः राजा अथवा मालिक का कर्तव्य है कि वह अपने हितैषियों की बातों को अथवा परामर्श को ध्यान से सुने तथा उस पर मंथन कर कर्तव्य पथ पर अग्रसर हो तथा परामर्श दाता को भी अपने मित्र अथवा स्वामी को उचित परामर्श देकर कर्तव्य पथ के लिए अग्रसर करना चाहिए।

4 - वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः। 8।

अन्वय - महात्मभिः समं विरोधोऽपि (अनार्य संग्मात्) वरम्।

शब्दार्थ- महात्मभिः महात्माओं के समं = साथ, विरोधोपि - विरोध भी, अनार्य संग्मात् = दुर्जनों की साथ के अपेक्षा, वरं = श्रेष्ठ है।

हिन्दी अनुवाद-महात्माओं के साथ विरोध भी दुर्जनों के साथ की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

व्याख्या-यहाँ ऐश्वर्य में वृद्धि करना महात्माओं के साथ विरोध की श्रेष्ठता का कारण है और महात्माओं के विरोध की श्रेष्ठता द्वारा 'दुर्योधन द्वारा कीर्ति-अर्जुन' का समर्थन किया गया है। अर्थात् महात्माओं की संगति सर्वथा सुखप्रद होती है और दुर्जनों की संगति सर्वदा दुःखप्रद होती है। कुछ समय के लिये यदि महात्माओं से संगति छूट जाए तो दुर्जनों से संगति नहीं करनी चाहिए क्योंकि दुर्जन दुःख के कारण होते ही है। वहीं यदि विपरित भाव में देखे तो स्पष्ट होगा कि दर्जुन से संगति छोड़कर यदि महात्माओं की प्राप्त होती है तो वह सुख का कारण होगा। यदि कभी महात्माओं की संगति छूटती है तो दुर्जनों की संगति नहीं पकड़नी चाहिए। दुर्योधन की संगति युधिष्ठिर से छूट जाने के पश्चात राज्य की स्थिति व्यवस्था बनाये रखने के लिए तथा युधिष्ठिर पर विजय हेतु निर्मल यश को फैला रहा है। क्योंकि महापुरुष से विरोध होने पर उन्हें नीचा दिखाने के लिए गुणों का आश्रय लेना ही पड़ेगा।

5 - गुणानुरोधेन बिना न सत्क्रिया ।12 ।

अन्वय-सत्क्रिया गुणानुरोधेन बिना न (प्रवर्तते)

शब्दार्थ- सत्क्रिया = सत्कार, गुणानुरोधेन = गुणों के सम्पर्क से, बिना = बिना, न = नहीं

हिन्दी अनुवाद - सत्कार गुणानुबन्ध के बिना नहीं होता।

व्याख्याः - सत्कार का पात्र वही है जो गुणो से युक्त होता है , गुणवान से गुण प्राप्त किया जा सकता है। तथा उसके सत्कार से ही सम्भव है। यदि अब गुणी का सत्कार किया गया तो अवगुण ही प्राप्त होगा, जो कि एक राजा के लिये तो शोभनीय नहीं ही है। राजा का हमेशा ही गुणों युक्त लोगों, मनस्वियों के साथ रहना तथा उनके सत्कार से गुणों को प्राप्त करना धर्म होना चाहिये क्योंकि गुणवान् की संगति में दुर्जन भी सज्जन हो जाता है जैसा कि नीतिशतक में कहा गया है।

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
तत्राश्रिताष्च तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कोलनिम्बकुटश्रा अपि चन्दनाः स्युः।

अर्थात् उस सुवर्ण पर्वत एवं सुमेरू पर्वत से क्या लाभ है ? जहाँ के लगे पेड़ वैसे के वैसे ही रह जाते है। हम तो उस मलयाचल को धन्य मानते है। जिसका आश्रय लेने पर कंकोल, दाल चीनी, नीम तथा कुरज पत्थर फूल के वृक्ष भी चन्दन से हो जाते हैं। अर्थात् गुणवान् सर्वत्र प्रशंसनीय है जिनकी संगति में आकर दुर्जन भी गुणवान हो जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1.

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

क. भारवेर्थगौरवम् किसके लिए आया है

क . दण्डी ख. माघ ग. भारवि घ. कालिदास

ख. किरातार्जुनीयम् की नायिका कौन है

क . द्रोपदी ख. कुन्ती ग. गान्धारी घ. सीता

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

ग. वरं विरोधोपि .... महात्मभिः।

घ. व्यक्ति की मनोवृत्तियॉ .... होती हैं।

सत्य या असत्य निर्धारित कीजिए

ङ. हितकारी और मनोहारी वचन दुर्लभ होते हैं।

6 - अहोदुरन्ता बलवद्विरोधिता। 23 ।

अन्वयः-अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता।

शब्दार्थः- अहो = आश्चर्य है, बलवद्विरोधिता = बलवानों के साथ विरोध, दुरन्ता = दुखमय परिणाम वाला होता है।

हिन्दी अनुवाद - आश्चर्य है, बलवानों से विरोध का परिणाम दुःखमय होता है।

व्याख्या - भले ही राजा कितना भी बलवान क्यों न हो परन्तु यदि वह अपने से बलवान से शत्रुता कर बैठा है तो हमेशा उसके मन मे डरावना ही रहेगा। भले ही ऊपर से दिखावे के रूप वह निश्चिन्त क्यों ने बैठा हो परन्तु मन में भय बना ही रहता है। बलवान शत्रु द्वारा प्रत्यक्ष रूप से संकट उत्पन्न न किये जाने पर भी भावी संकट की सम्भावना से वर्तमान में भी सुख-शान्ति का अनुभव नहीं होता। दुर्योधन अपने शत्रु युधिष्ठिर से हमेशा युद्ध की शंका के कारण भयभीत रहता है। क्योंकि वह जानता है युद्ध कौशल में युधिष्ठिर उससे कही अधिक श्रेष्ठ है। श्रेष्ठता स्वयं अपना स्वरूप स्थापित करती है। उसकी किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। भले हि दुर्योधन अपने समस्त राजनीतिक कौशलों से प्रजा में अपनी छवि एक सुसज्जित राजा की बनाई है। परन्तु जब भी वह पाण्डवों के विषय में सोचता है तो अन्तर्मन में भय व्याप्त हो जाता क्योंकि पाण्डवों की शक्ति को वह भली-भाँति जानता है।

7 - परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां- प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः ।125 ।।

अन्वयः- पर प्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशं गिरं प्रवृत्ति साराः खलु।

शब्दार्थ :- परप्रणीतानि - दूसरों द्वारा कहे गये ,वचांसि -वचनों का, चिन्वताम्-संग्रह करने वाले,मादृशं - मुझ जैसे, गिरः - वचन, प्रवृत्तिसाराः- वृतान्त रूप सारांश, खलु- निश्चय रूप से।

हिन्दी अनुवाद - दूसरों के द्वारा कहे गये वचन का संग्रह करने वाले मुझ जैसे लोगों के वचन निश्चित रूप से वृत्तान्त के सार मात्र हैं।

व्याख्या - गुप्तचर एक ऐसा व्यक्तित्व है जो कि स्वामी के सबसे अभिन्न अंग आँख के समतुल्य होता है। वह जो भी, जैसा देखता है। उसका उसी प्रकार वर्णन करना उसका धर्म है, परन्तु एक निश्चित समयवाधि में कह पाना उसके लिये नहीं अपितु सबके लिए कठिन है इसके लिए वह सभी विषयों को समेट कर बढ़े ही कम समय में इस रूप में कहता है जिससे कि सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त हो सकें। अतः वह सभी छोटी-बड़ी बातों का सार ही प्रस्तुत करता है जिससे कि स्वामी पूर्ण रूप से जानकारी प्राप्त कर अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़े। गुप्तचर कभी भी स्वामी को उपदेश नहीं देता है अपितु उसके कार्य में आने वाले विघ्नों से केवल सारगर्भित रूप से परिचित कराता है।

5.5.2 द्रौपदी द्वारा कथित सूक्तियाँ

8 - व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।30 ।

अन्वय- मूढधियः ते पराभवं व्रजन्ति ये मायाविषु मायिनः भवन्ति।

शब्दार्थः- मूढधियः- विवेकहीन, ते- वे, पराभवं - पराजय को अपमान को , व्रजन्ति- प्राप्त करते हैं, ये-जो मयाविषु- -मायावियों के विषयमें, यापिनः-मायावी, न - नहीं भवन्ति होते हैं।

हिन्दी अनुवादः-विवके हीन लोग पराजित होते है कपट पूर्वक व्यवहार करने वालों के प्रति

कपटपूर्ण व्यवहार नहीं करते।

व्याख्या - शठे शाठ्यं समाचरेत् अर्थात् शठ के साथ शठता का ही व्यवहार करना चाहिए, जो कपट व्यवहार करने वालों के साथ कपट का व्यवहार नहीं करते है वे मन्दबुद्धि वाले भोले व्यक्ति पराभव प्राप्त करते है, तथा वे शठ उसे उसी प्रकार मार देते है जैसे कवचादि से युक्त नहीं रहने वाले पुरुष के अन्दर तीर प्रवेश कर मार डालती है। मायावी व्यक्ति के साथ मायावी जैसा ही व्यवहार करना चाहिए। वहाँ सज्जनता अहितकर है। अतः शत्रु शत्रुता की ही भाषा समझ सकता है , नहीं तो पराजय निश्चित ही है।

यहाँ माया को अंश के आवरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। धूर्त लोगो से रक्षा के लिये माया कवच है जिस प्रकार कवच अंग नहीं अपितु अंग का रक्षक है। वैसे ही माया का स्वभाव नहीं समझना चाहिए , उसे गुण रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए, अपितु अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए विशेष परिस्थिति में उसका आश्रय लेना चाहिए । विशेष परिस्थिति में अर्थात् मायावियों के साथ भी सज्जनता का व्यवहार अहित कर होता है। इसी कारण कवि कहता है कि विवेक शून्य लोग पराजित होते है क्योंकि वे किसके साथ क्या व्यवहार करें, नहीं जानते वहीं दूसरी तरफ जो ये जानते है वे हमेशा कपट करने वाले साथ कपटपूर्ण व्यवहार कर जीत प्राप्त करते है।

9. अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः । 33 ।

अन्वयः-अबन्धकोपस्य आपदां विहन्तुः देहिनः स्वयम् एवं वश्याः भवन्ति।

शब्दार्थ:- अबन्धकोपस्य-जिसका क्रोध निष्फल नहीं होता, सफल क्रोध वाले, आपदानम्-आपत्तियों में, निर्धनतारूप विपत्ति को, विहन्तुः-नष्ट करेन वाले के देहिनः-शरीरधारीः प्राणी, स्वयमेव-स्वयं ही, वश्याः वशवर्ती वश में भवन्ति-हो जाते है।

हिन्दी अनुवाद-जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता और जो विपत्तियों को नष्ट करने वाला है, उसके वश में सभी प्राणी स्वयं हो जाते है।

व्याख्या:-जो राजा अथवा मनुष्य अनावश्यक क्रोध नहीं करता, परन्तु यदि किसी बात पर क्रोध आ जाए तो उसे दण्ड दिये बिना नहीं जाने देता, जो अपने हितैषियों का सदा भला करने के लिये सहयोगादि में निपुणता के उनके कष्टों का निवारण करता है। उसके लिये स्वयं हि सहिष्णुता वर्ग उपस्थित हो जाता है। अर्थात् सभी उसका गुण ज्ञान करते है। राजा का मुख्य कर्तव्य है कि प्रजा के दुखों से परिचित होकर उनके निराकरण के लिये सर्वस्व समर्पित कर दे जिससे की प्रजा हमेशा प्रसन्न हो कर उसके लिये तत्पर रहे और स्वयं को राजा के प्रति समर्पित कर दें। इसी से राज्य तथा राजा दोनों का सहसम्मान रहता है। युधिष्ठिर शत्रुओं पर क्रोध नहीं कर रहे है।

10 - अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः ।34।

अन्वयः- अमर्ष शून्येन जन्तुना जातहार्देन जनस्य आदरः न विद्विषा (सता) दरः न (भवति)।

शब्दार्थ - अमर्शषून्येन-क्रोधरहित, अमर्ष से शून्य, जन्तुना-क्षुद्र प्राणी से (दान देने वाले पुरुष से) जात हार्देन-भिन्नता होने के कारण, शत्रुता होने पर, दरः भय, न-नहीं (होता)।

हिन्दी अनुवाद - क्रोधहीन क्षुद्र (अदाता) प्राणी के मित्र बन जाने पर कोई उसका आदर नहीं करता और शत्रु बन जाने पर भय (भी) नहीं करता।

व्याख्याः- मनुष्य के सांसारिक नियमों के अन्दर आने वाली एक महत्वपूर्ण कड़ी है क्रोध। मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है कि वह सांसरिक परिवेश में रहते हुए अपने समक्ष हो रहे गलत कार्य पर अपना आक्रोश प्रकट करें तथा गलत होने से रोके। जिससे उसकी समाज में अपनी पहचान बनती तथा लोग उसका आदर करते हैं उसके क्रोध से डरते भी हैं। इसके विपरीत यदि कोई मनुष्य अपने सामने गलत कृत्य को देखने पर भी अपने आक्रोश प्रकट नहीं करता है तो वह समाज में तथा अपने ही लोगों के बीच हीन होता चला जाता है। न कोई उसका सम्मान करता है और न ही कोई उससे भय खाता है। वह मनुष्य क्रोध से विहिन होकर अपने अस्तित्व को गवाँ बैठता है। इसलिये ये मनुष्य को चाहिए की उपयुक्त समय पर अपने क्रोध को रोकने की चेष्टा न करें।

11- विचित्र रूपाःखलु चित्तवृत्तयः ।। 37 ।।

अन्वय- चित्तवृत्तयः विचित्र रूपाः खलु
शब्दार्थ- चित्तवृत्तयः - मनोवृत्तियाँ, विचित्ररूपाः-विचित्र प्रकार की, खलु- निश्चय ही।
हिन्दी अनुवाद - मनोवृत्तियाँ विचित्र होती हैं।
व्याख्या- वास्तव में इस संसार में मनुष्यों के स्वभाव विभिन्न होते हैं। कुछ लोग धीर-स्वभाव के होते हैं, कुछ लोग अधीर स्वभाव के, कुछ लोग धीर-अधीर स्वभाव वाले भी होते है। इसीलिए कोई भी किसी पुरुष की मनोवृत्तियों का ज्ञान अपने से नहीं कर सकता। कोई कि चित्तवृत्तियों के परस्पर भेद इसको समझने में बाधक हो जाता है। उसमे भी समयानुसार इनका बदलाव भला इन को समझने देगा। युद्ध स्थल में पहुँचा हुआ महारथी यदि अपने चित्त को वहाँ से हटाकर रागों में ले के चला जाय, मनस्वी अपने तपस्या के समय प्रजा के बारे में सोचे दान के समय धन के बारे में सोचे, अपमान के समय यश की स्थायित्व के बारे में सोचे तो क्या उनके लिये हितकर हो सकता हैः कदापि नहीं। परन्तु यह ज्ञान भी तो कोई कैसे करें क्योंकि यह तो उसके अपने है और उन पर पूर्णाधिकार भी उन्हीं का है ये कब किस रूप को धारण कर ले कोई समक्ष नहीं सकता स्वयं शरीरी भी नही तो भला समक्ष बैठा हुआ इसको समझ लेगा। इसका अनुमान लगाना भी मूर्खता ही प्रकट करता है। अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं है। व्यक्ति की मनोवृत्तियॉं विचित्र ही होती हैं।

12 - परैसपर्य्यासित वीर्य सम्पदां पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्। 38।।

अन्वय - परैः अपर्यासित वीर्य सम्पदां मानिनाम् पराभवः अपि उत्सव एव।
शब्दार्थः- परैः दूसरों से, शत्रुओं से, अपर्यासित वीर्य सम्पदां - अपराजित पराक्रमरूप धन वाले, जिनकी पराक्रम रूप सम्पत्ति नष्ट नहीं हुई है ऐसे, मानिनां - मनास्वियों, स्वाभिमानियों के लिये पराभवोऽपि - पराजय भी, तिरस्कार भी उत्सव ही होता है।
हिन्दी अनुवाद - शत्रुओं ने जिनके पराक्रम को अभिभूत नहीं किया है ऐसे मनस्वी व्यक्तियों के

लिए अपमान भी उत्सव ही होता है।

व्याख्याः - शत्रु मनुष्य का तिरस्कार करता है न कि उसके पराक्रम का और जिनका पराक्रम अभी थका नहीं है-पराजित नहीं हुआ है। ऐसे स्वाभिमानी लोगों के लिये तिरस्कार भी एक चुनौती है और इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए। शेर का बच्चा होने पर भी मद से काले कपोल वाले हाथियों पर ही आक्रमण करता है क्योंकि उसमें भी वही पराक्रम है जोकि शेर में भले ही हाथी उसका जवाब क्यो न दे दे। नीतिशतक में कहा गया है कि-

पद् चेतनोऽपि पादैः प्रज्वलति सवित्रुरिनकान्तः।
तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते ?।।

जब जड़ सूर्यकान्तमणि भी सूर्य की किरणों से छू जाने पर जल उठता है तो चेतन प्राणी दूसरे द्वारा किये गये अपमान को सहन कैसे कर सकता है। राजा तो बलयुक्त होता ही है। भला वह तिरस्कार कैसे सहन कर सकता है। जिसके पास पराक्रम है वहीं चुनौती स्वीकार कर सकता है। वीर पुरुषों को चुनौती स्वीकार करने में वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है, जैसा उत्सव में जिसके अप्रतिहत पराक्रम के होते हुए ऐसा अपमान हों। वह तो असहनीय है।

13 - व्रजन्ति शत्रु नवधूय निःस्पृहाः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः। 42।

अन्वय - निःस्पृहाः मुनयः शत्रून् अवधूय शमेना सिद्धिं व्रजान्ति भूभृतः न।
शब्दार्थ : - निस्पृहाः निष्काम, इच्छारहित, मुनयः- मुनिलोग, शत्रून्-शत्रुओं को, काम, क्रोध, मोह मद तथा मात्सर्य रूप छः मानव अवधूय- तिरस्कृत करके, पराजित करके, शमने-शान्ति से, शान्ति के माध्यम से, सिद्धि सफलता को व्रजन्ति-प्राप्त करते हैं, भूभृतः-राजालोग, न-नहीं।
हिन्दी अनुवाद - संयम द्वारा शत्रुओं को जीतकर मुनिजन सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा नहीं।
व्याख्या- शान्ति का मार्ग मुनियों के लिए है वे संयम द्वारा राम द्वारा मनुष्य के छः शत्रुओं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य को नियन्त्रित करके आत्म साक्षात्कार रूप सिद्ध करते है। भौतिक कामनाओं से रहित मुनियों के इस मार्ग का अनुसरण भौतिक कामना वाले राज समुदाय के लिये उचित नहीं है। क्षत्रिय तो कार्य पूर्ण होने से पहले विश्राम नहीं लेते वे अपने कार्य को संयम नहीं अपितु वीरता से, धीरता से, बुद्धिमानी से पूर्ण करता है। जिस प्रकार देवता लोग समुद्र में से बहुमूल्य रत्नों को पाने पर भी संतुष्ट नहीं हुए और भयंकर विष से भी नहीं डरे वे अमृतपीये बिना विरत नहीं हुए। इसी प्रकार धीर और बुद्धिमान मनुष्य संकल्पित वस्तु को बिना प्राप्त किए कभी नहीं रूकते है। अर्थात् धीर पुरुष अपने निश्चित कार्य को पूरा किए बिना कभी विश्राम नहीं लेते। विश्राम से विजय केवल मुनिजन पाते है। षान्ति द्वारा न तो षत्रु जीते जा सकते है और नही राज्यप्राप्ति रूप प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। अतः राजाओं के लिये बिना विश्राम के कार्य पूर्ण करने का स्वरूप ही सर्वोत्तम है। मुनिजन धीरता और गम्भीरता के अपने संयमित करके शत्रु पर विजय ले लेगें। राजा नहीं।

14 - निराश्रया हन्त हता मनस्विता। 43।
अन्वय- हन्त, निराश्रय मनस्विता हता।

शब्दार्थ- हन्त-दुख है, निराश्रय-आश्रय विहिन होकर, आधार रहित होकर, मनस्विता-स्वाभिमानिता, तेजस्विता, हता-नष्ट हो गयी, नष्ट हो जाएगी।

हिन्दी अनुवाद- कष्ट है कि आश्रय रहित (होकर) मनस्विता नष्ट हो जाएगी।

व्याख्याः - मनुष्य अपने कार्यो एवं सत्गुणों से ही श्रेष्ठ अथवा हीन माना जाता है। उसका यश ही सबसे बड़ा धन है, और अपने कर्म ही अभिमान है। मनुष्य यदि इन दोनों गुणों से युक्त हो उस समय शत्रु अपमान करता है तथा वह तिरस्कार के रूप में कुछ भी नहीं कह सकता, न कर सकता है तो उसकी मनास्विता अर्थात् यश एवं अभिमान स्वयं ही उसका साथ छोड़ देती है। क्योंकि यश भी तभी रहता जब उसके अनुरूप मनुष्य कर्म करता रहें तथा अभिमान तो स्वयं उत्पन्न एवं नष्ट की जाती है, जब कर्म ही उनके अनुसार नहीं किए जाएगें तो भला निरादर किसको सहनीय है। वे अपना स्थान छोड़ देगें। अतः मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने यश तथा अपने स्वाभिमान को बचाने के लिये यथोचित कर्म से विमुख न हो ऐसा नहीं होगा तभी मानसिकता बनी रहेगी अन्यथा आश्रय से परे होने पर उसका नष्ट होना स्वाभाविक है।

15 - अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीश विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि। 45।।

अन्वय-हि विजयार्थिनः क्षितीशाः अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति।

शब्दार्थ-हि क्योंकि, अरिषु-शत्रुओं के विषयमें, सोपधि-बहाने के साथ, सन्धि दूषणानि-सन्धिदोष, सन्धिभश्, विदधति करते है, कर देते है।

हिन्दी अनुवाद - क्योकि विजयाकांक्षी राजा शत्रुता की स्थिति में किसी ब्याज से संधि में दोष उत्पन्न कर देते है।

व्याख्या- यद्यपि बृहस्पति आदि दूसरे पाँच-छह प्रतिष्ठित ग्रह है। किन्तु विशेष पराक्रम में रूचि रखने वाला राहु, जिसका आकार सिरमात्र शेष है। अन्य ग्रहों से कभी वैर नही करता किन्तु सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों पर ही अमावस्या एवं पूर्णिमा पर्व में आक्रमण करता है। इस प्रकार पराक्रमशाली व्यक्ति अन्य लोगों की उपेक्षा कर मकान बलशाली शत्रुओं पर आक्रमण करते है। यदि बीच किसी प्रकार की संधि की बात भी है तो सन्धि में दोष निकाल कर युद्ध के लिये तत्पर हो जाते है। न कि सन्धि स्वीकार करते हैं। यहाँ यह धातव्य है कि विजय की आकांक्षा सामर्थ्य पर निर्भर है सामर्थ्य न होने पर विजय की आकांक्षा का कोई अर्थ नहीं है। सामर्थ्य होने पर यदि विजय की आकंक्षा है तब सन्धि को तोड़ना अनावश्यक है। सामर्थ्य रहने पर भी यदि विजय की आकांक्षा नहीं है तो, सन्धि को तोड़ना व्यर्थ है।

अभ्यास प्रश्न 2.

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए -

क. तीन पुरूषार्थो का प्रयोग करता है -

क. अर्जुन ख . दुर्योधन ग. युधिष्ठिर घ. शिव

ख. कपटी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए

क. कपट ख . मित्र ग. दोस्त घ. बान्धव

ग . ब्रह्मचारी के वेश में दुर्योधन के राज्य में गया था

(क) नारद (ख) अर्जुन

(ख) वनेचर (ग) शिव

घ. अर्थगाम्भीर्य के लिए प्रसिद्ध हैं

(क) दण्डी (ख) वाण

ख) ये तीनों (ग) भारवि

ङ . तीन पुरुषार्थों का प्रयोग करता है

(क) दुर्योधन (ख) शिव

(ख) युधिष्ठिर (ग) अर्जुन

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) पुरुषार्थ के अन्तर्गत धर्म......................काम, मोक्ष चारों की गणना होती है।

(ख) पाण्डवों में जुड़वाँ भाई...है।

(ग) ‘ न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति.......................................हितैषिणः।

(घ) निराश्रया: .... मनस्विता।

3. नीचे दिये हुए वाक्यों में सही वाक्यों के सामने सही (√) तथा गलत वाक्यों के सामने गलत (×) का निशान बनाए।

(क) दुर्योधन अपने सेवकों के साथ क्रूरता से व्यवहार करता है। ( )

(ख) हितकर और मनोहारी वचन सुगमता से मिलते है ( )

(ग) किरातार्जुनीयम् 18 सर्गो में विभक्त है ( )

5.6 सारांश

आपने इस इकाई के अध्ययन से जाना कि एक कुशल शासक को शासन के गुण दोषों के विषय में पूर्ण जानकारी तथा उसका सफलता पूर्वक उपयोग ही उस प्रजा के लिये प्रिय बनाता है। वहीं दूसरी ओर एक नारी का अपने पति को कर्तव्यों के लिये उद्यत करना तथा अपने सत्ता को पुनः प्राप्त करने में युद्ध के लिये तैयार करना इन सभी बातों को बड़ी सावधानी से सफल बनाने का प्रयास भारवि ने किया है। इन्हीं गुणों के कारण उनके लिए प्रसिद्ध लोकोक्ति ‘भारवेरर्थगौरवम् है। संयम द्वारा शत्रुओं को जीतकर मुनिजन सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा नहीं। शान्ति का मार्ग मुनियों के लिए है वे संयम द्वारा मनुष्य के छः शत्रुओं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य को नियन्त्रित करके आत्म साक्षात्कार रूप सिद्ध करते है। भौतिक कामनाओं से रहित मुनियों के इस मार्ग का अनुसरण भौतिक कामना वाले राज समुदाय के लिये उचित नहीं है। आश्रय रहित (होकर) मनस्विता नष्ट हो जाएगी। मनुष्य अपने कार्यो एवं सत्गुणों से ही श्रेष्ठ अथवा हीन माना जाता है। विजय की आकांक्षा सामर्थ्य पर निर्भर होती है, सामर्थ्य न होने पर विजय की आकांक्षा का कोई अर्थ नहीं है। सामर्थ्य होने पर यदि विजय की आकंक्षा है तब सन्धि को तोड़ना अनावश्यक है। सामर्थ्य रहने पर भी यदि विजय की आकांक्षा नहीं है तो, सन्धि को

तोड़ना व्यर्थ है। मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने यश तथा अपने स्वाभिमान को बचाने के लिये यथोचित कर्म से विमुख न हो ऐसा नहीं होगा तभी मानसिकता बनी रहेगी अन्यथा आश्रय से परे होने पर उसका नष्ट होना स्वाभाविक है। अत: इस इकाई का अध्ययन करने से आपनें विविध शिक्षाओं को जाना , और उन शिक्षाओं से सम्बन्धित तथ्यों को भली भाँति समझा सकेंगें।

5.7 शब्दावली

1. हितैषिण: - हित चाहनें वाले।
2. दुर्लभम् - दुष्प्राप्य।
3. महात्मभि: - महात्माओं के साथ।
4. दुरन्ता - दुखमय।
5. मूढधिय: - विवेकहीन।
6. हन्त -दुख है।

5. 8 बोध (अभ्यास) प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1- का उत्तर-

क . ग　　ख. क　　ग. समं　　घ. विचित्र　　ङ. सही

अभ्यास प्रश्न 2- के उत्तर -

क. दुर्योधन　　ख. कपट　　ग. वनेचर　　घ. भारवि　　ङ . दुर्योधन

रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) अर्थ

(ख) नकुल - सहदेव।

(ग) मृषा।

(घ) हन्त हता।

सही गलत -

क. गलत　　ख. गलत　　ग. सही

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारवि किरातार्जुनीयम्।
2. वामन शिवराम आप्टे संस्कृत हिन्दी शब्दकोश
3. डॉ० उमाशंकर शर्मा ऋषि संस्कृत साहित्य का इतिहास

5.10 अन्योपयोगी ग्रन्थ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास　डॉ० बलदेव उपाध्याय
2. किरातार्जुनीयम् समीर शर्मा (व्याख्याकार)

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वनेचर तथा द्रौपदी के कथनों की समीक्षा कीजिए।
2. भारवेरर्थगौरवम् इस शब्द की पुष्टि कीजिए।
3. प्रथम सर्ग के सूक्तियों पर प्रकाश डालिए।